शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

दिसम्बर : १९६३ ☆ वर्ष उन्नीसवाँ, कार्तिक, वीर नि०सं० २४९० ☆ अंक : ८

अंधकार और प्रकाश

अंधकार में देखें तो सोना, लोहा, लकड़ी आदि सभी वस्तुएँ एक-सी दिखाई देती हैं, उनमें भिन्नता मालूम नहीं होती। और दीपक के प्रकाश द्वारा देखने पर वे वस्तुएँ पृथक्-पृथक् यथावत् ज्ञात होती हैं; उसीप्रकार अज्ञानरूपी अंधकार में आत्मा और पर-वस्तुएँ एकमेक भासित होती हैं परंतु आत्मा का पर से भिन्नत्व भासित नहीं होता। आत्मा को पर से भिन्न जानने के लिये प्रथम ही स्वाश्रय की दृष्टि और सम्यग्ज्ञानरूपी प्रकाश की आवश्यकता है। यह (सम्यग्ज्ञान) धर्म की इकाई है।

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

[२२३]

एक अंक
चार आना

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

सुभाषित

जो मनुष्य अजीर्णादि रोगों कीं शांति अर्थ औषधि तो लेता है किंतु विरुद्ध भोजन छोड़ता नहीं है, तो वे रोग कभी शांत होते नहीं, उसीप्रकार जो जीव रागादि दोषों को शांत करने के लिये घोर तपादि आचरण करता हो किंतु परनिंदारूप भोजन छोड़ता नहीं है; उसके रागादि दोष भी कभी नष्ट नहीं हो सकते हैं। कारण कि परनिंदा करनेवाला ईर्षालु मनुष्य, मान कषायवश हो करके दूसरे में न रहनेवाले दोषों को प्रगट करता है तथा जो गुण अपने में नहीं हैं, उन्हें वह प्रकाशित किया करता है। इसप्रकार उसके वे राग-द्वेषादि घटने के बजाय बढ़ते ही हैं ॥२४९॥ *(आत्मानुशासन टीका)*

जो जीव अन्य प्राणियों के समान अपने भी दोषों को देखता है, उसके समान कोई दूसरा नहीं हो सकता है, वह शरीर संयुक्त है, फिर भी वह विवेकवान् है, मुक्त के ही समान है। *(कवि श्री वादिभसिंह)*

दूसरे के दोषों को और अपने गुणों को प्रगट किया है वह सब, धर्मात्मा के लिये आगे-आगे विवेकज्ञान की वृद्धि होने से अज्ञानता पूर्ण प्रतीत होता है।

(आत्मानुशासन-२५०)

समयसार शास्त्रजी

परमागम श्री समयसारजी शास्त्र जो अत्यंत अप्रतिबुद्ध अज्ञानियों के लिये भी समझानेवाला शास्त्र है। जिसमें चारों अनुयोगों की बात आ जाती है। यह ग्रंथ पहले दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल बंबई द्वारा १५०० छपवाया गया था जो कि १ मास में ही सारा बिक गया एवं फिर भी अत्यधिक माँग होने से श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट सोनगढ़ की ओर से तृतीयावृत्ति छपने का काम शुरु हो गया है। सो शीघ्र ही पूर्ण होकर जिज्ञासुओं की सेवा में प्रस्तुत किया जावेगा। —प्रकाशक

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

दिसम्बर : १९६३ ☆ वर्ष उन्नीसवाँ, कार्तिक, वीर नि०सं० २४९० ☆ अंक : ८

दीपावली के दिन

अंतर में ऐसे महान उज्ज्वल ज्ञानरूपी दीपक प्रगट करो कि जिससे अज्ञान अंधकार का सम्पूर्णरूप से नाश हो जाये।

स्वरूप लक्ष्मी की इसप्रकार पूजा करो कि पुनः जड़ लक्ष्मी की आवश्यकता ही न पड़े। शारदा-सरस्वती-भगवान की दिव्यध्वनि की अथवा भावश्रुत-केवलज्ञान की ऐसी पूजा करो कि पुनः लौकिक शारदा-पूजन की आवश्यकता ही न रहे।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी ऐसे निश्चय दिव्यरत्न प्राप्त करो कि जिससे पौद्गलिक जड़ रत्नों की जरूरत ही न रहे।

सर्वज्ञ वीतराग भगवान के कहे हुए अहिंसा-सत्य-अचौर्य-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रहरूपी ऐसे अमूल्य आभूषण धारण करो कि लौकिक आभूषण धारण ही न करना पड़े।

आत्मसुख को लानेवाला मंगलमय स्वकाल (स्व-अवस्था) प्रगट करो कि पुनः कभी भी अमंगल होने ही न पावे। ऐसी आत्मस्वभावरूप पावन धूप प्रगट करो कि जिसकी सुगंध चारों ओर फैले और जिसमें द्रव्य-भावकर्म जलकर भस्म हो जायें कि जिससे पुनः वे उत्पन्न ही न हों।

आत्मा के अत्यंत मिष्ट, स्वादिष्ट और अपूर्व प्रकार के ज्ञानामृत भोजन इसप्रकार करो कि फिर से पौद्गलिक मिष्टान्न की आवश्यकता ही न रहे। निर्वाण लड्डू ऐसे चढ़ाओ कि जिससे स्वरूप श्रेणी चढ़ने पर अप्रतिहतभाव से निर्वाण की प्राप्ति अवश्य हो।

महावीर निर्वाण कल्याणक मंगल दिवस पर अंतर में ऐसा आत्मिक महावीर्य उछालो कि जिससे महावीर के समान अवस्था की प्राप्ति हो जाये। मोह-राग-द्वेष के फटाके ऐसे फटाफट फोड़ डालो कि जिससे संसार में परिभ्रमण की फड़फड़ाहट का प्रसंग ही उपस्थित न हो।

आत्मा के असंख्य प्रदेशों में अनंत ज्ञान-दीपक प्रगट हो, वही सच्ची दीपावली है और इसके लिये सतत प्रयत्नशील रहनेवाले जीव ने ही सच्ची दीपावली मनायी कहा जाता है।

ऐसी दीपावली मनानेवाला ही वास्तव में नित्य अभिवंदन तथा अभिनंदन का पात्र है।

नूतन वर्षाभिनंदन!

सब जीवों को आत्मिक सुख समृद्धि हो और धर्म वात्सल्य में अपार वृद्धि हो!

(श्री खीमचंदभाई सेठ)

समस्वभावी चैतन्यस्वरूप में झूलनेवाले संतों का

मंगलमय प्रसाद

''शुद्ध प्रकाश की अतिशयता के कारण जो सुप्रकाश समान है, आनंद में सुस्थित जिसका नित्य अचल एकरूप है तथा निष्कंप जिसकी ज्योति है, ऐसा यह आत्मा हमें प्रगट हो। जो भेदविज्ञान की शक्ति से निज (स्वरूप की) महिमा में लीन रहते हैं, उनको नियम से (निश्चित्) शुद्ध तत्त्व की प्राप्ति होती है; ऐसा होने से अचलितरूप से समस्त अन्य द्रव्यों से दूर वर्तते हुए उन्हें अक्षयकर्म मोक्ष होता है; चित्स्वभाव के पुंज द्वारा ही अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य किये जाते हैं, ऐसा जिसको परमार्थ स्वरूप है और जो एक है, ऐसे अपार ज्ञानानंदमय समयसार का मैं समस्त बंध पद्धति को (पराश्रय व्यवहार को) दूर करके अनुभव करता हूँ; मोक्षेच्छुओं को मात्र एक ज्ञान के आलंबन से, नियत ही ऐसा यह एक पद प्राप्त करने योग्य है। हे भव्य! ज्ञानमात्र आत्मा में आत्मा का निश्चय करके ''इसमें सदा रतिवंत बन, इसमें सदा संतुष्ट बन (और) इससे ही बन तू तृप्त, तुझको सुख अहो! उत्तम होगा।''

ऐसी सत्य शरण बतानेवाले, मंगल आशीष दातार, धर्म धुरंधर संतों को तथा परम उपकारी पूज्य गुरुदेव को अत्यंत भक्तिभाव से नमस्कार करते हैं।

सर्व साधक संतों की जय हो।

आत्मा इन्द्रियग्राह्य नहीं है, वह अंतर्मुख ज्ञान से ज्ञात होता है

[राजकोट शहर में नियमसार गाथा ३८ पर पूज्य गुरुदेव का प्रवचन]

(तारीख १२-२-६१)

* यह आत्मतत्त्व शरीर और वाणी से भिन्न नित्यानंद शुद्ध है; उसे भूलकर अज्ञानी पुण्य-पाप तथा शरीरादि में अपनत्व-कर्तृत्व मानता है; इसलिये उसे शुद्धभाव का अनुभव नहीं होता और दुःख का ही वेदन करता है; इसलिये जिसे सुखी होना हो, उसे प्रथम ऐसी प्रतीति करना चाहिये कि मैं शरीर एवं रागादि से भिन्न चैतन्य हूँ। आत्मा सदा परिपूर्ण ज्ञानानंद शक्तिवान हूँ; उसे पहिचानकर, अंतर-स्थिरता के बल द्वारा जिन्होंने पूर्णशक्ति प्रगट की, उन्होंने (राग के अवलंबन बिना-इच्छा बिना) पूर्ण ज्ञान द्वारा जगत के सर्व पदार्थों को जाना और कहा कि—आत्मा एकसमय में परिपूर्ण ज्ञानमय है; वह देहादि से भिन्न है; उसे रुचि में लेकर जो उसकी श्रद्धा-ज्ञान तथा अनुभव करेगा, वह सुखी होगा।

* अंतर में विचारशक्ति-ज्ञान है। १०० वर्ष की आयुवाला मनुष्य ९० वर्ष पहले की बातों को क्षणभर में याद कर सकता है—ऐसी शक्ति उसमें प्रतिक्षण विद्यमान है; उस ज्ञान को अपने त्रेकालिक ज्ञानस्वभाव की ओर उन्मुख करके, स्वयं अपने स्वद्रव्य का (-ध्रुव ज्ञायकस्वभाव का) आश्रय करे तथा उसी में लीनता करे तो तीन काल-तीन लोक के समस्त पदार्थों को एक समय में जानने की जो शक्ति अपने में है, वह प्रगट होती है।

* वर्तमान मति-श्रुतज्ञान द्वारा पूर्व के अनेक भवों का ज्ञान होता है और ऐसे पूर्व भवों का स्मरण करनेवाले इस काल में भी हैं; किंतु वह अपूर्व नहीं है। शुद्ध ज्ञानानंदस्वभावी आत्मा को जानना वह अपूर्व है तथा वही हित का कारण है।

श्रीमद् राजचंद्रजी ने कहा है कि—'जीवद्रव्य एक अखंड संपूर्ण होने से उसका ज्ञान सामर्थ्य भी संपूर्ण है। जो संपूर्ण वीतराग हो, वह संपूर्ण सर्वज्ञ होता है।' उन्होंने यथार्थ अनुभव द्वारा अंतर के कपाट खोलकर आत्मसाक्षात्कार किया था; इसलिये सहज आत्मा के वेदन द्वारा ऐसे सुंदर वाक्य की रचना की थी।

* अंतर में रमण करे, वह सर्वज्ञपद प्राप्त करता है। मोक्षमार्ग कैसे प्रगट हो—दु:खों से छुटकारा कैसे हो? उसका विचार करते हुए उन्होंने मोक्षमाला नामक ग्रंथ में काव्य लिखा है कि—'वह दिव्यशक्तिमान जिससे बंधन मुक्त हो।' पुण्य-पाप तथा शरीरादि की एकत्वबुद्धि के बंधन में पड़ा हुआ पराधीन, दु:खी हो रहा है; तो अब अंतर प्रतीति द्वारा उसे बंधन को काटकर निर्दोष सुख की प्राप्ति कर—ऐसा वे कहते हें। वे गृहस्थदशा में रहने पर भी गृहस्थदशा की रुचि रहित त्रैकालिक ज्ञानस्वभाव की दृष्टि रखकर साधकपने की साधना करते थे।

* अब यहाँ आचार्यदेव कहते हैं कि मोक्ष और मोक्ष के उपाय का कारण, कारणपरमात्मा ध्रुववस्तु है; वह औदयिक, औपशमिकादि चार भावों के लक्ष से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है; किंतु त्रिकाल एकरूप कारणस्वभाव शक्तिरूप है, उस पर दृष्टि तथा एकाग्रता करने से शुद्धि का अंश तथा पूर्णता प्रगट होती है। जैसे—लैंडी पीपर में जो पूर्ण चरपराहट की शक्ति भरी है, वह कारणस्वभाव है और उसे घोंटने से जो प्रगट हो, उसे कार्य कहा जाता है; उसीप्रकार आत्मा में त्रैकालिक ध्रुव शक्तिरूप शुद्धस्वभाव है, उसे कारणपरमात्मा, कारणशुद्धजीव, अन्त:तत्त्व अथवा शुद्धभाव कहा जाता है। (उसमें द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म तो नहीं है किंतु औदयिकादि चार भाव भी नहीं है।)

* प्रभु! तेरी प्रभुता अंतर में विद्यमान है, वहाँ दृष्टि डाल। जो सर्वज्ञ परमात्मा हुए, उन्होंने कहा है कि—तू भी हमारी जाति का है। जिसप्रकार सरावगी जाति का प्रीतिभोज हो तो उस जाति का गरीब आदमी भी बड़े आदमी के पास बैठकर भोजन कर सकता है; उसीप्रकार परमात्मा कहते हैं कि तू मेरे समान-मेरी जातपांत का है, मात्र वर्तमान दशा में अंतर है; त्रैकालिक स्वभाव में किंचित् अंतर नहीं है। इसलिये वर्तमान अंश की रुचि छोड़कर त्रैकालिक पूर्ण स्वभाव की रुचि कर। ऐसे अपने कारणपरमात्मा में दृष्टि डालने से ही सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। वर्तमान पर्याय में पुण्य-पाप की वृत्ति होती दिखायी देती है किंतु उसरूप ज्ञायकभाव नहीं हो जाता। विकारी वृत्ति ज्ञानी को प्रतिक्षण दूर होती जाती है। 'जो दूर हो जाये, वह तेरा स्वरूप नहीं है'—ऐसा सिद्धांत है।

* शांति, स्वतंत्रता, अतीन्द्रिय आनंद का मार्ग (उपाय) तुझे प्राप्त नहीं हुआ, इसलिये तू संयोग और पुण्य की रुचि में अटक रहा है और उसी कारण तुझे अंतर की वस्तु क्या है, उसकी सूझ नहीं पड़ती। भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने करुणा करके अंतरंग मार्ग खोलकर बतलाया है। उनके रचे हुए श्री समयसार, श्री प्रवचनसार, श्री पंचास्तिकाय शास्त्रों की सर्वोत्तम टीका एक हजार वर्ष पहले श्री अमृतचंद्राचार्य ने की है।

* श्री कुन्दकुन्दाचार्य दो हजार वर्ष पहले हो गये हैं। वे सर्वज्ञ कथित आत्मतत्त्व का अनुभव करते हुए, आत्मा की शांति में (अतीन्द्रिय आनन्द की रमणता में) झूलते-लीन रहते थे। मद्रास के पास ८० मील दूर पोन्नूर-हिल नामक सुंदर पहाड़ी है; वहाँ उनके चरण चिह्न हैं। आसपास काफी संख्या में जैनों की बस्ती है। वहाँ से कुछ ही दूर स्थित एक गाँव के मठ में एक संन्यासी रहते हैं; उनके यहाँ प्राचीन लेख है कि—कुन्दकुन्दाचार्य महान समर्थ ज्ञानी और आकाशगमन ऋद्धिधारी दिगम्बर मुनि थे। अन्य स्थानों पर भी प्राचीन शिलालेख मिलते हैं, जिनमें श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव तथा उनकी आकाशगमन ऋद्धि का उल्लेख है।

* दक्षिण यात्रा के समय वहाँ के जानकार पंडित कहते थे कि—श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव इसी पोन्नूरहिल की गुफा में तप-ध्यान करते थे और यहीं से वे महाविदेहक्षेत्र गये थे। वहाँ से लौटकर शास्त्रों की रचना भी यहीं की थी। वे विदेहक्षेत्र में आठ दिन तक श्री सीमंधर भगवान के पास रहे थे। एक बार भगवान के समवसरण का चिंतवन करते हुए विरह लगा कि—अरे! साक्षात् तीर्थंकर परमात्मा यहाँ नहीं हैं.... और फिर महाविदेहक्षेत्र जाने का योग मिल गया। वहाँ आठ दिन तक रहे, यह बात यथार्थ है, त्रिकाल सत्य है। मात्र शास्त्रों के आधार से यह बात नहीं है। इस बात का स्मरण होने से हमें अति हर्षोल्लास हुआ कि—धन्य है यह क्षेत्र और धन्य है वह काल... जब श्री कुन्दकुन्दाचार्य समान परमानंद में झूलनेवाले, पूर्णानंद की प्रतीति एवं आनंद के अनुभव में लीन रहनेवाले संत यहाँ विचरते होंगे। विदेहक्षेत्र में आज भी श्री सीमंधर भगवान साक्षात् विराजमान हैं और वहाँ समवसरण में उनकी दिव्यध्वनि खिर रही है।—यह प्रत्यक्ष बात है।

* इस नियमसार शास्त्र में अध्यात्म की अति स्पष्ट बात कही है। शुद्धभाव, परमस्वभाव, त्रैकालिक कारणस्वभाव, कारणद्रव्य, कारणशुद्धजीव, कारणपरमात्मा कहो, यह सब एक ही है। जिस भंडार में दृष्टि डालने से परमानंद की प्राप्ति होती है, वह अंत:तत्त्व (ध्रुवस्वभाव) ऐसा है कि—पुण्य-पाप रागादि भावकर्म, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म या जड़ शरीर उसके नहीं है। आत्मा त्रैकालिक सहज ज्ञायकभावरूप है। उसे पहिचाने बिना कभी धर्म नहीं होता। आत्मा के धर्म में अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है। धर्मी (गृहस्थदशा में) चक्रवर्ती हो, तथापि वह राग से भिन्नता करके अंतर ज्ञायकभाव में दृष्टि डालता है। आत्म स्वाद के समक्ष उसे छह खण्ड का राज्य अत्यंत तुच्छ भासित होता है।

* श्रवणबेलगोला में ऋषभदेव भगवान के पुत्र श्री बाहुबलि भगवान की अद्‌भुत मूर्ति है,

जिसकी ऊँचाई ५७ फीट है। दुनियाँ में वह नौवाँ आश्चर्य माना जाता है। प्रतिमाजी की मुखमुद्रा पर यथार्थ वीतरागता झलक रही है। दक्षिण की यात्रा से लौटने पर एक पंडितजी ने पूछा कि—'आपने तीन दिन तक रोज डेढ़-डेढ़ घंटे तक प्रतिमाजी के दर्शन किये तो आपको उसमें क्या विशेषता, दिखायी दी? उत्तर दिया कि—अहो.... वह तो आँखों में तैर रही है। अंतर में अद्भुत अपार पवित्रता और बाह्य में उत्कृष्ट पुण्य की पराकाष्ठा देखी। एकाग्रतापूर्वक देखने पर मानो संपूर्ण आत्मा अंतर में स्थिर हो गया हो। पवित्रता का पिंड शांत आनंद सागर में लीन दिखायी दिया और बिजली की चमक के समान पुण्य भी देखा।

* आत्मा कैसा है?—कि कर्ममल से तथा विभाव गुण-पर्यायों से रहित है। यहाँ मति-श्रुतज्ञान को विभाव गुण-पर्याय कहा है। केवलज्ञान क्षायिक पर्याय है, वह निचली साधकदशा में नहीं होती। वह भी अनित्य पर्याय है, क्योंकि क्षण-क्षण बदलती है। आत्मा उतना ही नहीं है।

* 'अहो! प्रभु.... प्रभुता है तेरी चैतन्य धाम में...'

भाई! तेरा चैतन्यघन शाश्वत् सत् ध्रुव है। क्षायिक पर्याय के लक्ष से भी उसे नहीं पकड़ा जा सकता। चार भावों को विभाव (विशेषभाव) कहा है; वे ध्रुव (सामान्य) नहीं हैं।

* जो परमपारिणामिकस्वभाव की श्रद्धा-रुचि, महिमा करेगा, वह अल्पकाल में सिद्ध परमात्मा बनकर उनके साथ विराजमान होगा। जो जिज्ञासापूर्वक सत्य समझना चाहे, उसमें कोमलता, सरलता, सज्जनता आती ही है। कोई सत्ताप्रिय हाकिम हो और उसके तम्बू में एक खूँटी ढीली पड़ने से सल आ जाये तो उसे अच्छा नहीं लगता; फिर हवा में सारा तम्बू उड़ रहा हो तो उसे कैसे अच्छा लगेगा? उसीप्रकार अज्ञानी को पर में अपनी इच्छानुसार कार्य करने का अभिमान होता है, उसे निरालंबी पूर्ण आत्मा कैसे अच्छा लगेगा? संयोगों की भावना होती है, किंतु संयोग तो अनित्य-अशरण है, उनमें से नित्यतारूप शरण कहाँ से आयेगी? बालक जन्म लेकर माता की गोद में आये, उससे पूर्व ही वह अनित्यता की गोद में चला जाता है। इस शरीर और पुण्य-पाप की वृत्ति भी अनित्य ही है; उसके आश्रय में सुख-समाधान ढूँढ़े तो नहीं मिलता।

* पुण्य के फलरूप धन की वृद्धि होने पर अज्ञानी को अभिमान हो जाता है कि—मैं बड़ा हूँ! किंतु प्रभु! तेरी सुखदाता वस्तु कौन सी है?—यह तो तूने सुना ही नहीं। शरीर सदा जड़ है वह उसके अपने कारण बदलता है; पुण्य-पाप आस्रव मलिन भाव हैं; उनसे निर्मलता प्रगट नहीं होती; किंतु उनकी अपेक्षा रहित भीतर ध्रुव स्वभाव में देखे तो नित्य कारण-शक्ति में से शुद्ध कार्य प्रगट होता है।

* आत्मा विभाव गुणपर्याय से रहित है—ऐसा कथन नास्ति से है; किंतु भीतर अस्तिरूप से देखने पर वह अनादि-अनंत ज्ञायकस्वरूप है। वर्ण, गंध, रस, स्पर्शरहित सदा अरूपी अमूर्तिक है। अत्यधिक ज्ञान के कारण भी शरीर में भार का अनुभव नहीं होता, इससे निश्चय होता है कि ज्ञान में भार नहीं है; वह पूर्व कालीन रागादि क्लेश की बात वर्तमान में याद कर सकता है, किंतु उसे याद करने से रागादि नहीं आते, इसलिये सिद्ध होता है कि ज्ञान में पुण्य-पाप (रागादि) रूप मलिनता नहीं है। रागादि में एकत्वबुद्धि-कर्तृत्वबुद्धि वह मुख्य दोष है; उस जीव के ज्ञान को अज्ञान (मिथ्याज्ञान) कहा जाता है।

* अधिक जानने से ज्ञान में भार मालूम हो या राग-द्वेष उपाधि बढ़ जाये, ऐसा नहीं है। ज्ञान तो आत्मा का स्वरूप है। जिसकी वर्तमान अपूर्ण दशा में भी पिछले कई वर्षों की बात याद करने की शक्ति है, वह यदि पूर्ण हो तो किसे नहीं जानेगा ?—सर्व को जान सकता है।

* आत्मा अनादि-अनंत अतीन्द्रिय ज्ञानमय वस्तु है, वह सदा संयोग और विकार के अभावस्वभावरूप है; उसे इंद्रिय एवं शुभविकल्प द्वारा नहीं जाना जा सकता। जीवद्रव्य के ज्ञायकभाव को पारिणामिकभाव कहा जाता है, वह त्रिकाल शुद्ध ही है; किंतु उसकी वर्तमान प्रगट दशा में अशुद्धता, अल्पज्ञता तथा अल्पशक्ति है। उसे गौण करके (उसका आश्रय करने की श्रद्धा छोड़कर) त्रिकाल सामान्य स्वभाव की दृष्टि करने से धर्म का प्रारम्भ होता है।

* जिसप्रकार जल का नित्य स्वभाव तो शीतलतामय है, किंतु वर्तमान दशा में अग्नि के संबंध से उष्ण अवस्था दिखायी देती है; और शक्तिरूप शीतलता का अनुभव नहीं होता। उष्णदशा में जीभ, आँख, हाथ द्वारा शीतलता का निर्णय करना चाहे तो नहीं हो सकता; किंतु वह उष्णता क्षणिक है, इसलिये दूर हो सकती है और उस उष्णदशा में भी नित्य शीतलस्वभाव विद्यमान है, ऐसा ज्ञान द्वारा निर्णय हो सकता है। जिसप्रकार पानी में उष्णता है, वह पानी का नित्यस्वभाव नहीं है, किंतु उसकी क्षणिक योग्यता है; उसीप्रकार आत्मा में शांत स्वतंत्र ज्ञानानंदस्वभाव नित्य है, तथापि उसकी वर्तमान दशा में पराश्रय से होनेवाली अल्पज्ञता-अशुद्धता है, वह उसकी क्षणिक योग्यता है, उसके लक्ष से यथार्थ नित्य शुद्धभाव का (आत्मा का) अनुभव नहीं हो सकता। आत्मा वर्तमान प्रगट अंश जितना नहीं है, वह वचन तथा इंद्रिय ग्राह्य नहीं है किंतु अंतर्मुख ज्ञान से ज्ञात हो, ऐसा है। क्षणिक पर्याय (पूर्ण निर्मल) जितना भी नहीं है; वह तो अनादि-अनंत-अतीन्द्रिय एवं संपूर्ण चैतन्यमय पदार्थ है।

* काली मिर्च तथा लाल मिर्च की चरपराहट में अंतर है। ज्ञान उसे जान सकता है, किंतु वाणी द्वारा उसका कथन नहीं कर सकता। गाय के ताजे घी का स्वाद भी ज्ञान में ज्ञात होता है किंतु किसी अन्य वस्तु के साथ उसकी तुलना की जाये या उपमा दी जाये तो उससे संतोष नहीं हो सकता; उसीप्रकार आत्मा का वर्णन वाणी द्वारा नहीं हो सकता।

'जो स्वरूप सर्वज्ञे दीठुं ज्ञानमां,
कही शक्या नहिं ते पण श्री भगवान जो;
तेह स्वरूपने अन्य वाणी ते शुं कहे,
अनुभवगोचर मात्र रह्युं ते ज्ञान जो॥'

वाणी तो वाहन है; वह अपेक्षा से भेद करके वस्तु का वर्णन कर सकती है, किंतु उसमें तो मात्र संकेत आता है—एक साथ सम्पूर्ण स्वरूप नहीं आ सकता। वाणी के संकेत से समझ लेनेवाला अंतर प्रतीति कर ले तो ज्ञान हो कि यह ऐसा तत्त्व है।

'क्यारे थईशुं बाह्यान्तर निर्ग्रंथ जो...' इसमें श्रीमद् राजचंद्रजी यथार्थ निर्ग्रंथता की-वीतरागी मोक्षमार्ग में आरूढ़ होने की भावना भाते हैं। बाह्य में वस्त्र का ताना भी नहीं है, अंतर में मिथ्यात्व-रागादि दोष नहीं हैं। मिथ्यात्व की गाँठ तो उन्होंने पहले ही तोड़ दी थी और गृहस्थदशा में विशेष वीतरागी चारित्रदशा की भावना भाते हैं।

* राग, इच्छा, कथन और इंद्रियों के व्यापार से पार शुद्ध चैतन्य वस्तु है। जटा, नरेली और ऊपर की लाल छाल से रहित सफेद गोले की भाँति आत्मा अंतर में शरीर, कर्म एवं राग से रहित सहज स्वाभाविक ज्ञानानंदमय अनादि-अनंत है, वह किसी के द्वारा निर्मित नहीं है और न किसी पुण्य या शुभराग की क्रिया से उसकी प्राप्ति होती है। क्षयोपशमभावरूप अपूर्ण विकास जितना वह नहीं है; क्षायिकभाव भी आत्मा का त्रैकालिक स्वरूप नहीं है। आत्मा तो अनादि-अनंत परमपारिणामिक ज्ञायकभावस्वरूप है। जिसके आधार से सम्यग्दर्शनरूप धर्म का प्रारम्भ होकर, पूर्ण शुद्धतारूप क्षायिकभाव प्रगट हो, ऐसे ध्रुवरूप कारणस्वभाव को परमभाव अथवा शुद्धभाव कहा जाता है।

* गज (माप) बड़ा या पर्वत? बड़े-बड़े पर्वतों की नपाई हो जाने पर भी गज (माप) कम नहीं होता। अनंत पर्वतों को नाप लेने पर भी गज ज्यों का त्यों रहता है। जिसप्रकार गज के मापने की शक्ति अपार है, उसीप्रकार आत्मा के सर्वज्ञस्वभाव में जानने की अपार शक्ति है। वह तीन

काल–तीन लोक को एक साथ एक समय में समस्त प्रकार से जानता है। एक लोक है, किंतु कदाचित् अनंतगुने लोक हों, तब भी उन्हें जान सकता है। अहो! ऐसे आत्मा के गीत अज्ञानी ने प्रेमपूर्वक कभी नहीं सुने।

* माता अपने बच्चे को सयाना कहकर उसे समझा–पटाकर सुलाने के गीत गाती है। सर्वज्ञ धर्मपिता अज्ञान मोहमय भावनिद्रा से जीवों को जगाने के लिये गीत गाते हैं। वे कहते हैं कि—हे जीव! तू अनादि–अनंत, शरीर से भिन्न एवं परमज्ञानस्वभावी, परमपारिणामिक तत्त्व है; तुझमें मात्र ज्ञान ही भरा है, उसमें दृष्टि डाल। अज्ञानदशा में भी अंतर में अपार निर्मलतारूप ज्ञान अव्यक्तरूप से विद्यमान है, परंतु अज्ञानी को तीव्र मोह के कारण ज्ञान विकास की शक्ति मंद हो जाती है, किंतु ज्ञानी की दृष्टि अनादि–अनंत कारणपरमात्मारूप परमभाव निधान पर जाती है।

* यह कारणपरमात्मा सो वास्तव में त्रिकाली आत्मा ही है; अति आसन्न भव्य जीवों को इस निजपरमात्मतत्त्व के सिवा अन्य कुछ भी उपादेय नहीं है। अमर होने के मार्ग की यह बात है। अंतर में ध्रुव कारण परमात्मद्रव्य नित्य एकरूप है; उसकी श्रद्धा, उसका लक्ष और उसमें एकाग्रता करके आनंद प्राप्त करने की यह रीति है।

●●●

परमपावन दिव्यता के दिव्य संदेश देकर परमात्मा का
विरह भुलानेवाले पूज्य स्वामीजी की जय हो!

सैद्धांतिक चर्चा

लेख नं० ६ गतांक से चालू

लेख नं० ६ का उपसंहार (प्रश्नोत्तर आदि के रूप में)

२९२— प्रश्न(१) जैन अनेकांतवादी हैं स्याद्वादी हैं, स्याद्वाद विद्या के आराधक हैं। स्याद्वाद को अपेक्षावाद कहने में आता है। समस्त द्रव्य श्रुतज्ञान अपेक्षा से अनादि-अनंत है और केवलज्ञान की अपेक्षा ये आदि-अंतवाले हैं, ऐसा मानना अनेकांत है या नहीं ?

उत्तर:— (१) इसप्रकार मानना वह **मिथ्या अनेकांत है और ऐसी श्रद्धा भी असत्य है क्योंकि दोनों ज्ञान वस्तु को 'अनादि-अनंत' जानते हैं।**

(२) भगवान श्री अकलंकदेव ने अनेकांत के दो प्रकार कहे हैं (१) सम्यक अनेकांत (२) मिथ्या अनेकांत।

(३) जैनियों ने सम्यक् अनेकांत को स्वीकार किया है किंतु मिथ्या अनेकांत को स्वीकार नहीं किया है।

(४) पंडित टोडरमलजी साहब श्री मोक्षमार्गप्रकाशक अध्याय ७, पृष्ठ ३७५ देहली से प्रकाशित में कहते हैं कि '**तातें मिथ्यादृष्टि जीव अनेकांतरूप वस्तुकौं मानैं परंतु यथार्थ भावकौं पहिचानि मानि सके नहीं, ऐसा जानना।**'

(५) सम्यक् अनेकांत की व्याख्या (परिभाषा) श्री अमृतचंद्राचार्य ने निम्न प्रकार से श्री समयसार २४७ कलश में पृष्ठ ५७२ हिन्दी में की है:—

'इसप्रकार एक वस्तु में वस्तुत्व की उपजानेवाली परस्पर विरुद्ध दो शक्तियों का प्रकाशित होना अनेकांत है।'

(६) देखिये 'एक वस्तु में वस्तुत्व की उपजानेवाली' यह वाक्य बड़ा उपयोगी है। एक वस्तु को अनादि-अनंत मानना और उसी वस्तु को फिर सादि-सांत मानना, यह तो वस्तु का वस्तुत्व निपजावती नहीं है। वस्तु को श्रुतज्ञानी एक प्रकार से जाने और सर्वज्ञ उससे विरुद्ध प्रकार से जाने तो सम्यक् श्रुतज्ञान सम्यक् नहीं रहा किंतु मिथ्याज्ञान हो गया। सम्यक् श्रुतज्ञान तो सदा केवलज्ञान अनुसार ही होता है।

(७) सम्यक् अनेकांत निम्न प्रकार होता है:—प्रत्येक द्रव्य स्व की अपेक्षा अनादि-अनंत है और पर की अपेक्षा अनादि-अनंत नहीं है, ऐसा '**सर्वकालीन अस्तित्वमय**' द्रव्य है।

(८) सम्यक् अनेकांत इसप्रकार भी हो सकता है कि प्रत्येक द्रव्य-द्रव्य की अपेक्षा नित्य है अर्थात् अनादि-अनंत है और पर्याय की अपेक्षा अनित्य है, ऐसा सदाकाल रहनेवाला अस्तित्वमय द्रव्य है, (हर समय रहनेवाला अस्तित्वमय द्रव्य है)।

(९) वस्तु स्वरूप का निर्णय करने में श्रुतज्ञान और केवलज्ञान की भिन्न-भिन्न अपेक्षा नहीं लागू पड़ती, परंतु उपरोक्त अनेकांत लागू पड़ता है, मिथ्या अपेक्षा से लागू पड़ना ही मिथ्या अनेकांत है।

स्याद्वाद

(१०) श्री जयसेनाचार्य निम्न प्रकार 'स्याद्वाद' के विषय में कहते हैं:—

'स्यात्कथंचित् विवक्षित प्रकारेणानेकान्तरूपेण वदनं वादो जल्पः कथनं प्रतिपादनमिति स्याद्वाद।'

(११) यह व्याख्या बड़ी ही सुंदर है, वस्तु में **जो अपेक्षा लागू पड़ सकती हो, उसी अपेक्षा को कथंचित् कहने में आता है।**

(१२) कथंचित् का अर्थ:—कथन=कोई प्रकारे, चित=ज्ञान करना, **वस्तु में जो प्रकार हो, उसका ज्ञान कथंचित् हो सकता है** किंतु वस्तु में जो प्रकार न हो, उसको कथंचित् स्यात्, विवक्षित प्रकार अनेकांतरूप लागू पड़ता ही नहीं, इसलिये किसी भी वस्तु को श्रुतज्ञान अपेक्षा से अनादि-अनंत जानना और केवलज्ञान अपेक्षा से उसको सादि-सांत जानना, वह मिथ्यादृष्टि का मिथ्यास्याद्वाद है।

स्याद्वाद विद्या की आराधना

(१३) 'विरुद्ध ऐसा स्याद्वाद विद्या' नहीं है किंतु निश्चित और अविरुद्ध ऐसी स्याद्वाद विद्या है; इसलिये '**अविरुद्ध ऐसी स्याद्वाद विद्यारूपी देवी सज्जनों द्वारा सम्यक् प्रकार से निरंतर आराधना करनेयोग्य है**' ऐसा जैनियों का सिद्धांत है, (देखिये, श्री नियमसार, गाथा १६१ की टीका, पृष्ठ ३२६ हिन्दी में।)

(१४) द्रव्य के अस्तित्व को सदाकालीन अर्थात् अनादि-अनंत मानना और उसी अस्तित्व को सादि-सांत मानना, यह तो **विरुद्ध हुआ, अविरुद्ध नहीं हुआ; मिथ्याप्रकार हुआ,**

सम्यक्प्रकार नहीं हुआ; वह तो विराधना हुई, आराधना नहीं हुई। श्रुतज्ञान और केवलज्ञान में परस्पर विरुद्धता है ही नहीं परंतु श्रुतज्ञान, केवलज्ञान अनुसार ही है, यह बात आगे भूमिका में बतलाई है।

२९३—**प्रश्न**(२) इसप्रकार मानने से तो सर्वज्ञ के ज्ञान में वस्तु का आदि-अंत जानने में नहीं आया तो फिर सर्वज्ञ कैसे ?

उत्तर:— (१) सभी सर्वज्ञ भगवान कहते हैं कि '**द्रव्य अपने स्वभाव को कभी छोड़ता नहीं है**' (देखिये श्री प्रवचनसार की गाथा ९५ का प्रथम शब्द 'अपरिव्यक्त स्वभावेन' श्री प्रवचनसार की गाथा ९६ में स्पष्ट करने में आया है कि द्रव्य का स्वभाव सर्वकाल गुण-पर्यायवत् और उत्पाद-व्यय-ध्रुव्य युक्त अस्तित्व (सत्) है।)

(२) अन्यवादी भी द्रव्य तो कहते हैं, कोई ऐसा मानते हैं कि उसका सत्पना ईश्वर से प्रगट हुआ है, कोई दूसरे प्रकार से मानते हैं, उनके मत में द्रव्य 'आदि-अंत' हो सकता है; **कोई भी अन्यवादी सर्वकाल में गुण-पर्यायवत् और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त अस्तित्व (सत्) को मानते नहीं हैं। एक 'जैन सर्वज्ञ'** ही ऐसा मानते हैं। कोई भी जीव सर्वज्ञ होवे तो **द्रव्य अपने स्वभाव को छोड़ देवे, ऐसा कैसे बन सकता है ? द्रव्य को सदाकाल सत्रूप स्वीकार करके अनुमोदित होना चाहिये अर्थात् आनन्द से संमत होना चाहिये।** भगवान के ज्ञान में द्रव्य को सादि-सांत देखने में नहीं आवे, इसलिये **वे सर्वज्ञ नहीं है, ऐसा अतात्त्विक तर्क करना छोड़ देना चाहिये।**

दृष्टांत:—जैसे कोई भी गोलाकार पदार्थ है, उस आकार का आदि-अंत होता ही नहीं, तो फिर दिखलाईये कि उसका आदि और अंत कहाँ है ? उसप्रकार जिस पदार्थ का आदि-अनंत नहीं होता, वहाँ आदि-अंत स्थापन करना यह किसप्रकार न्याय से घटित हो सकता है ? कभी भी नहीं।

(३) श्री समंतभद्राचार्य स्वयंभूस्तोत्र ११४ श्लोक में कहते हैं कि चर-अचर सब द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय सदाकाल अस्तित्वरूप है, ऐसा सब सर्वज्ञ देव एक समय में देखते हैं और वह सर्वज्ञ का लक्षण है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक भावों की परम्परा में द्रव्यस्वभाव से ही सदा रहता है, ऐसा सर्वज्ञदेव ने देखा है।

२९४—**प्रश्न**(३) सर्वज्ञ के ज्ञान में द्रव्य अनादि-निधन देखने में आया है, ऐसा मानने का फल क्या है ?

उत्तर:— (१) श्री प्रवचनसार गाथा १५४ में कहा है कि—

'जो जीव उस (पूर्वोक्त) अस्तित्व निष्पन्न, तीन प्रकार से कथित, भेदोंवाले द्रव्यस्वभाव को जानता है, वह अन्य द्रव्य में मोह को प्राप्त नहीं होता। इस गाथा की टीका विशेष रूप से पढ़ने योग्य है।

(२) अन्य द्रव्य (जिसमें निमित्त समावेश पामते हैं) प्रत्येक मोह छोड़ना चाहते हो वे द्रव्यों को सर्वकालीन (अस्ति से) और अनादि-निधन ऐसा हरेक को (नास्ति से) भिन्न-भिन्न माने, जो ऐसा मानते हैं, उस जीव को परद्रव्य के कर्तापने की बुद्धि विलय हो जाती है। अन्य को अनादि से अन्य का कर्तापणा की बुद्धि चालू रहती है, देखिये-प्रवचनसार गाथा १६२।

२६५—**प्रश्न**(४) सर्वज्ञ के ज्ञान 'द्रव्य सादि-सांत' है, ऐसा मानने का फल क्या है ?

उत्तर:—श्री प्रवचनसार की गाथा ९८ में लिखा है कि—इसप्रकार का माननेवाला 'परसमयी' है क्योंकि जिनेन्द्रदेव ने तत्वत: द्रव्य स्वभाव से सिद्ध और स्वभाव से सत् है और इसीप्रकार आगम से भी सिद्ध है, ऐसा कहा है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य जिसको पर समयी कहे, उसको दूसरा आचार्य भी परसमयी न माने, ऐसा बन सकता ही नहीं है।

२९६—**प्रश्न**(५) श्री प्रवचनसार का ज्ञेय अधिकार और श्री गोम्मटसार जीवकांड का द्रव्यों की स्थिति अधिकार में ऐसा बताया कि सर्वज्ञ के ज्ञान में सब द्रव्य सर्वकालीन अर्थात् अनादि-अनंत है, भगवान समंतभद्राचार्य अन्यवाद को परास्त करने में बड़े पराक्रमी थे उन्होंने सर्वज्ञ का लक्षण क्या कहा है और इससे क्या सिद्ध होते हैं ?

उत्तर:—(१) श्री स्वयंभूस्तोत्र में बीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रत भगवान की स्तुति का श्लोक ११४ में कहा है कि:—

'स्थिति-जनन-निरोध-लक्षणं,
चरमचरं च जगत् प्रतिक्षणम्।
इति जिन सकलज्ञलांछनं,
वचनमिदं वदतांवरस्यते'॥११४॥

(२) देखिये, इसमें तीर्थंकर का सर्वज्ञपना सिद्ध किया है, उनका विषय रूप जड़-चेतन, **चर-अचररूप जगत हरेक समय में है, ऐसा कहा है। प्रतिक्षण कहो, सर्वकाल कहो, अनादि-अनंत कहो, सादि-सांत का अभावरूप कहो, अन-अवधि त्रिसमय अवस्थायी कहो, हर समय कहो, वे सब एकार्थ हैं।**

(३) अन्यवादी द्रव्य की उत्पत्ति एक ईश्वर से हुई, ऐसा मानते हैं, उसका निषेध करके द्रव्य को प्रतिक्षण कहके उसकी उत्पत्ति नहीं होती है, ऐसा कहा है।

(४) ईश्वरवादी का निषेध करने के लिये सर्वज्ञ का स्वरूप और ज्ञेय का स्वरूप किसप्रकार है, वह इस श्लोक में बताया है। विशेष में यह कहा है कि भगवान सब उपदेशदाताओं में से सर्वश्रेष्ठ है; भगवान को 'जिन सकलज्ञ' भी कहा है 'जिन' कहकर अन्यवादी जिन नहीं है, ऐसा कहा है।

(५) प्रतिक्षण का अर्थ ऐसा होता है कि भगवान को केवलज्ञान हुआ, **उससमय से लेकर अनंतकाल तक हरेक क्षण में अनादि अनंतकाल तक का प्रत्येक समय-समय की स्थिति (ध्रुव) जनन (उत्पाद) निरोध (व्यय) रूप चर-अचर सब पदार्थों को भगवान जानते हैं, भगवान का सकलज्ञपना का यह लक्षण है।**

(६) इस श्लोक में 'चर-अचर' शब्द बहुत ही उपयोगी है। चर में नित्य-निगोद, ईतर-निगोद एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक संज्ञी-असंज्ञी, पर्याप्त-अपर्याप्त, जीवसमासवाला, मार्गणास्थानवाला, गुणस्थानवाला, विग्रहगतिवाला सब संसारी जीव इसमें आ जाते हैं। इसके उपरांत भी स्कंधों, स्थूल सूक्ष्म, २२ प्रकार के पुद्गल वर्गणा, छह प्रकार के पुद्गल स्कंध तथा परमाणु कार्माण-तैजस—ऐसे पाँच प्रकार के शरीर छहकाय के शरीर, सूक्ष्म स्कंध और परमाणु आ जाते हैं, उन सबका ज्ञान भगवान को सर्वप्रकार से होता है, ऐसा यहाँ आचार्यदेवने कहा है। सब अशुद्ध जीवों, अशुद्ध पुद्गलों का परिपूर्ण सर्वप्रकार का ज्ञान होता है, ऐसा बताया है। श्री समयसार गाथा १६० की टीका में सर्वज्ञदेव को सर्वप्रकार का ज्ञान होता है, ऐसा श्री जयसेनाचार्य भी कहते हैं।

(७) श्री गोम्मटसार जीवकांड की गाथा ३६९ टीका में कहा है कि—'×××और केवलज्ञान प्रत्यक्ष कहिए विशद और स्पष्टरूप मूर्तिक-अमूर्तिक पदार्थ स्थूल सूक्ष्म पर्याय उनके विषयरूप प्रवर्ते हैं' देखिये, यहाँ स्थूल सूक्ष्म कहने से सब स्थूल सूक्ष्म पुद्गल, कार्मण शरीर, बादर और सूक्ष्म तथा चारों गति के जीव हैं, वह सब 'चर' पदार्थ का जो वर्णन किया है उसमें आ जाते हैं और कोई भी विषय केवलज्ञान के बाहर नहीं है, ऐसा बताने के लिये कहा है कि 'प्रत्यक्ष का लक्षण विशद या स्पष्ट है। **जहाँ अपने विषय के जानने में कमी न होय, उसको विशद या स्पष्ट कहिए**' इस गाथा की दोनों संस्कृत टीकाओं में लिखा है कि '**मूर्तामूर्तार्थ व्यंजनपर्याय स्थूल सूक्ष्मांशेषु सर्वेष्वपि प्रवृत्ति संभवात् साक्षात्कारणाश्च केवलज्ञानं प्रत्यक्षं समस्तत्वेन विशदं स्पष्टं भवति।**'

(८) देखिये, इसमें समस्त मूर्त-अमूर्त अर्थपर्याय, व्यंजनपर्याय स्थूल अंश और सूक्ष्म अंश, सबमें सर्व क्षण केवलज्ञान की प्रवृत्ति बताई है, इन शब्दों में ऊपर कहे हुवे सब शुद्ध-अशुद्ध, जीव-पुद्गलों की पर्याय और उसका समस्तपने का ज्ञान सर्व प्रकार से आ गया, **कोई भी स्थूल सूक्ष्म अंश शेष नहीं रहा, ऐसा स्पष्ट कहा है।** कोई भी बात अनिश्चित है, ऐसा माननेवाले केवलज्ञान के सत्य स्वरूप को मानते ही नहीं हैं, ऐसा यहाँ स्पष्ट कहने में आया है।

(९) श्री परमात्मप्रकाश अध्याय १ गाथा ५ टीका में केवलज्ञान का स्वरूप दिया है, उसमें भगवान के केवलज्ञान में **बाह्यवृत्ति निमित्त से उत्पन्न स्थूल-सूक्ष्म परपदार्थ सर्व को** भगवान जानता है, ऐसा कहा है, देखिये **यहाँ निमित्त का ज्ञान, उपादान का ज्ञान, अशुद्ध पर्याय का ज्ञान आ गया।**

(१०) भविष्य की अशुद्ध पर्याय का निमित्त संबंधी का ज्ञान नहीं होता है, इसलिये वह अनिश्चित है, ऐसा माननेवाले को भगवान ब्रह्मदेवसूरि असत्य कहते हैं।

(११) इसप्रकार भगवान कुन्दकुन्दाचार्य श्री पूज्यपादाचार्य श्री अकलंकदेव श्री समंतभद्राचार्य, श्री नेमीचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ती, श्री ब्रह्मदेवसूरि, श्री जयसेनाचार्य, श्री अमृतचंद्रसूरि आदि सर्व आचार्य डूंडी पीटकर नगाड़ा बजाकर कहते हैं कि जिस जीव और पुद्गल की अशुद्ध पर्याय का और उसके निमित्त का ज्ञान भगवान को नहीं होता है, ऐसा माननेवाले को जैनधर्मी किसप्रकार कहने में आवे ? कभी भी कहने में नहीं आवेगा। इसप्रकार सब आचार्यों ज्ञानियों और अज्ञानियों सबको पुकार करके कहते हैं।

(१२) ज्ञान और ज्ञेय का परस्पर अविनाभाव संबंध, निमित्त-नैमित्तिक संबंध तथा दोनों अशक्यविवेचन (अलग करना अशक्य) यह सब बातें ऊपर आ गई हैं। निमित्त-नैमित्तिक का अर्थ ऐसा नहीं है कि निमित्त-नैमित्तिक को कुछ कर सकते हैं। नैमित्तिक तो स्वयं-स्वत: अपने आप अपनी योग्यता से परिणमन करते हैं। समय-समय की छहों द्रव्य की पर्याय कार्य है, उसको हर समय में उपादान-निमित्त कारण होते ही हैं, न हो ऐसा बन सकता नहीं है-पर्यायों को '**दौड़ते बहते, प्रवाहरूप आयत सामान्य समुदाय**' कहा है। देखिये, प्रवचनसार ज्ञेय अधिकार गाथा ९३, पृष्ठ १०९ हिन्दी टीका 'निमित्त बिना नहीं होता है' वैसा व्यवहार कथन है, उसका अर्थ श्री जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला (सेठी ग्रंथमाला बम्बई से प्रकाशित) पृष्ठ ३२ से ९५ तक प्रकरण छठवाँ है।

(१३) जैनी उपादान (तात्विक निश्चय कारणों) निमित्त (अतात्विक उपचार कारणों)

हरेक उत्पाद के लिये प्रत्येक समय होता ही है, ऐसा मानते हैं; सर्व जैनियों को निमित्तकारणों की स्वीकृति है ही, ऐसा होने पर निमित्त कारण चाहिये, निमित्त कारण बिना कार्य नहीं होता है, ऐसी जोरदार दलीलों की क्या आवश्यकता है ? वे दलीलें निरर्थक हैं और कालक्षेप करनेवाली हैं।

(१४) जो दो कारणों को स्वीकार नहीं करते हों और निमित्त कारणों को स्वीकार नहीं करते, इसके लिये जरूरी हो तो भले हो जो निमित्त का लोप करते हैं, उसको कहा है कि 'हे भव्य, जो निमित्त न हो तो तुम किसके आश्रय से विकार करोगे ?' किंतु जो उपादान और निमित्त दोनों कारणों को मानते हैं, उसके लिये तुम निमित्त को मानो-मानो, ऐसी दलीलें बिल्कुल निरर्थक है, दो कारणों को स्वीकार करनेवाले के प्रति द्रव्यगत स्वभाव ऐसा है कि कार्य के लिये दो कारण होते हैं, ऐसी दलील करने की क्या आवश्यकता है ?

(१५) दो कारणों को स्वीकार करनेवाले के लिये निम्नलिखित प्रश्न उपस्थित हो सकते हैं:—

(१) वर्तमान पर्याय पीछे के समय की और उसके पीछे के समय की अनंत काल तक की पर्यायें द्रव्य में अत्यंत अभावरूप है ? नहीं है तो किसप्रकार है ?

(२) जो अत्यंत अभावरूप न हो और उसको अनंत-अनंतकाल तक निमित्तकारण न मिले, ऐसा माना जाये तो क्या वह पर्याय उत्पन्न होगी या नहीं ?

(३) निमित्ताधीन दृष्टि से आकुलता और पराधीनता होती है या अनाकुलता और स्वाधीनता होती है ?

(४) निमित्त के शोधने में आत्मा रुक जावे तो आत्मा की खोज करके उसकी शुद्धि का काम कब करेगा ?

(५) अनंतानंत पुद्गलों और अनंतानंत सूक्ष्म स्कंधों का परिणमन में और मेरु आदि स्थूल स्कंधों का वेस्रासिक अवस्था में निमित्त कौन जीव है ? वह निमित्त किसप्रकार शोधेगा ? आदि विषयों पर निर्णय कर लेने की आवश्यकता है, **शुद्धतारूप धर्म तो 'स्वतः एव' होता है—देखिये श्री स्वयंभूस्तोत्र भगवान शांतिनाथ स्तुति श्लोक नं० ७६।**

२९७—**प्रश्न**(६) श्री 'स्वयंभूस्तोत्र' के ११४ श्लोक में सर्व द्रव्यों की स्थिति अस्तिरूपे सर्वकाल और नास्तिरूपे अनादि-अनंत है, ऐसा अनेकांत स्वरूप तो चर-अचर सब पदार्थों को

भगवान ने जाना, किंतु उसमें चर-अचर पदार्थों की संख्या कितनी है, वे जिन सकलज्ञ तरीके जानी है ?

उत्तर:—हाँ, चर-अचर पदार्थों की स्थिति ज्ञान में आई, उसमें उसकी संख्या कितनी है, वह आ गई है। पदार्थों की कितनी संख्या है, वे ज्ञान में निश्चित हुए बिना सब चर-अचर पदार्थों का पूरा ज्ञान होता नहीं है - और भगवान उस संबंध में सकलज्ञ हैं, ऐसा इस श्लोक में कहा है और जब संख्या जानी तो वह कितनी है, वह भी जानी है।

वह संख्या कितनी है उसका स्वरूप भगवान के ज्ञान में आया और उसकी गिनती की पद्धति किसप्रकार है, वह श्री त्रिलोकसार की गाथा ९ से ५२ में भगवान नेमीचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ती ने दी है, उसका संक्षेपसाररूप दो चार्ट तथा विवेचन अंग्रेजी गोम्मटसार की प्रस्तावना के पृष्ठ २० से २८ तक में तथा श्री त्रिलोकसार की प्रस्तावना पृष्ठ २१ में आया है; उसीप्रकार की गिनती से धर्मास्तिकाय की एक, अधर्मास्तिकाय की एक, आकाश १, काल की लोक प्रमाण असंख्यात, जीव और पुद्गल की संख्या कितनी वह सब त्रिलोकसार की गाथाओं में दी है, भगवान को इन सब संख्या का, अनंतानंत का अनंतानंतरूप से तथा जिसकी संख्या जिसप्रकार हो, उसीप्रकार सकलज्ञ में प्रत्यक्षपने आई है।

वर्तमान काल के गणित शास्त्रियों ने अनंत Indefinete आदि का ज्ञान बीजगणितरूप से जानते हैं तो फिर भगवान नहीं जाने, ऐसा कैसे बने ?

लौकिक गणित शास्त्र में अनंत आदि का स्वरूप आता है और अलौकिक गणित में न आवे, ऐसा बनता ही नहीं है, **संख्या मर्यादित-अमर्यादित - दो प्रकार की होती है, संख्या कहने से मर्यादितपना ही आता है, ऐसी मान्यता झूठ है।**

२९८—**प्रश्न**(७) भगवान के ज्ञान में चर-अचर पदार्थों का काल और संख्या आई वह तो जानी किन्तु भगवान ने सब पदार्थों का जनन (उत्पाद) जाना, इसमें कौन सी गम्भीरता है ?

उत्तर:—प्रवाहरूप से सर्वकाल की अर्थात् अनादि-अनंत काल की सब पर्यायों का उत्पाद जाना, उस समय प्रवाहरूप से अनादि के सिद्धों, अनादि के तीर्थंकरों, अनादि के सौ इन्द्रों यह सब बातों अनंत काल तक की जानी तथा समय-समय वर्तमानरूपे कौन सी पर्याय हुई, विकारी हुई कि अविकारी हुई, शुद्ध हुई कि अशुद्ध हुई कि मिश्ररूप रूप अर्थात् कितनी शुद्ध, कितनी अशुद्ध, ऐसा एक-एक पर्याय का अंश भगवान को जानने में आया, जीवों की सिद्ध सहित पाँचों गतियाँ अनादि-अनंत, ७ तत्त्वों, ९ पदार्थों, ६ द्रव्यों, ५ अस्तिकाय और लोक का सर्वकालपना अर्थात् अनादिनिधनपना, यह सब भगवान के ज्ञान में आ गया है। परमागम प्रवाहरूप से अनादि-अनंत है ऐसा भी जाना।

'**उत्पाद जाना**' उसका अर्थ यह है कि उपादान कारणों तथा निमित्त कारणों, अनादि से अनंत काल तक की सब पर्यायों को भी स्पष्टरूप से जाना; कुछ भी ज्ञान के बाहर रह गया, अज्ञान रह गये, ऐसा मानना तत्त्व से विरुद्ध है और अनिश्चित कोई अंश मानना वे सर्वज्ञ का अस्वीकार है, इतना ही नहीं, वह ज्ञेय स्वरूप का भी अस्वीकार है।

२९९—**प्रश्न**(८) श्री गोम्मटसार गाथा ४६० में केवलज्ञान के लिये 'असपन्न' आदि कहा, उसका क्या अर्थ होता है ?

उत्तरः—(१) प्रतिपक्षी चार घातिया कर्मों के नाश से अनुक्रम रहित सकल पदार्थ को तो प्राप्त हुआ है, इसलिये उसको असपन्न कहते हैं। किसी-किसी प्रति में 'असपत्न' ऐसा भी आता है। उसका अर्थ युगपद् और समस्त पदार्थों के ग्रहण करने में उसका कोई बाधक नहीं है, इसलिये उसको 'असपत्न' (-प्रतिपक्षरहित) कहते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि कोई भी विकारी पर्याय भगवान के ज्ञान में न आवे, ऐसा मानने से उसको 'असपन्न और असपत्न' विशेषण लागू पड़ेगा ही नहीं और इसलिये केवलज्ञान भी रहेगा ही नहीं। उस गाथा में 'सम्पूर्ण' 'समग्र' 'सर्व भावगत' 'लोकालोक वितिमिर' ऐसे जो-जो विशेषण दिये हैं, वह कोई भी लागू नहीं पड़ेगा क्योंकि अशुद्ध पर्याय और निमित्त का ज्ञान न होने से 'असम्पूर्ण' रहा, 'असमग्र' हुआ, सपत्न अर्थात् सपन्न हुआ, 'असर्वगतः भाव' हुआ और 'लोकालोक तिमिर' रहा, इसलिये गाथा ४६० का एक भी अंश लागू नहीं पड़ेगा, और वह केवलज्ञान नहीं रहेगा, केवलज्ञान कोई बाह्य पदार्थ की अपेक्षा रखते ही नहीं। 'केवल' का अर्थ 'असहाय' होता है। भविष्य में अशुद्ध पर्याय के लिये कौन सा निमित्त होगा, वह अनिश्चित हो तो वह ज्ञान 'असहाय' ज्ञान न रहा। 'केवल' का अर्थ 'असहाय' होता है। इसलिये अनिश्चित की असत्य कल्पना सच्ची मानने में आवे तो सर्वज्ञ का ज्ञान केवल अर्थात् असहाय सिद्ध नहीं होगा; 'असहाय' का अर्थ, 'अप्रतिवस्तु व्यापकत्वात् असहायम्' ऐसा होता है, देखिये श्री नियमसार गाथा ११, १२ संस्कृत टीका, समस्त वस्तुओं में केवलज्ञान व्यापक हो जाने से असहाय है। अशुद्ध पर्याय में नहीं व्यापते हैं, ऐसा मानना मिथ्या है, 'सर्व भावगत' में विभाव भाव समाविष्ट है।

(२) इस विषय में स्वामी पूज्यपाद निम्नप्रकार कहते हैं:—

'केवलज्ञान निरपेक्ष होने से बाह्य पदार्थों की अपेक्षा के बिना ही नष्ट और अनुत्पन्न पदार्थों को जाने तो इसमें कोई विरोध नहीं आता। केवलज्ञान को विपर्यय ज्ञानत्व का भी प्रसंग नहीं आता क्योंकि वह यथार्थ स्वरूप से पदार्थों को जानता है। यद्यपि नष्ट और अनुत्पन्न वस्तुओं का वर्तमान में

सद्भाव नहीं है, तथापि उनका अत्यन्ताभाव भी नहीं है। केवलज्ञान सर्व द्रव्य और उनकी त्रिकालवर्ती अनंतानंत पर्यायों का अक्रम से एक ही काल में जानता है; वह ज्ञान सहज (बिना इच्छा के) जानता है। केवलज्ञान में ऐसी शक्ति है कि अनंतानंत लोक-अलोक हो तो भी उन्हें जानने में सर्वथा समर्थ है।'

३००—**प्रश्न**(९) भगवान ने तीनों काल की अर्थपर्याय और व्यंजनपर्याय को जाना, ऐसा श्री गोम्मटसार में कहा तो 'अर्थ' और 'व्यंजन' पर्याय का क्या अर्थ है ?

उत्तर:—(१) 'व्यंजन' पर्याय का अर्थ स्थूल चिरकालस्थायी, वाकगोचर, छद्मस्थ की दृष्टि का विषय ऐसी विभावरूप व्यंजनपर्याय; जीव की नर-नारकादि है, पुद्गल की विभाव व्यंजनपर्याय चिरकालस्थायी दो अणु से प्रारम्भ करके स्कंध है, जीव की स्वभावव्यंजनपर्याय सिद्धरूप है।

'अशुद्ध अर्थ' पर्याय जीव में छह स्थानगत, कषाय की हानि-वृद्धि विशुद्धि संक्लेशरूप शुभ-अशुभलेश्या का स्थान।

पुद्गल की 'विभाव अर्थ' पर्याय दो अणु से प्रारम्भ करके सभी स्कंधों में वर्णांतर आदि परिणमनरूप।

'शुद्ध अर्थ पर्याय' अगुरुलघुगुण षट्गुणी हानि-वृद्धि इन सबको भगवान एक समय में जानते हैं, ऐसा समझना। देखिये श्री पंचास्तिकाय, गाथा १६ श्री जयसेनाचार्य संस्कृत टीका।

(२) श्री गोम्मटसार गाथा ५८१ की टीका में कहा है कि, 'सूक्ष्मवचन अगोचर क्षणस्थायी ऐसी तो अर्थपर्याय, स्थूल वचनगोचर चिरस्थायी ऐसी व्यंजनपर्याय, सो त्रिकाल संबंधी अर्थपर्याय तथा व्यंजनपर्याय मिले, इतनी ही सर्व द्रव्यों की स्थिति हैं।'

(३) श्री गोम्मटसार जीवकांड (श्री राय० जैन शास्त्रमाला से प्रसिद्ध) पृष्ठ ३७६ गाथा ५८१ में कहा है कि "छहों द्रव्य अनादि निधन है, फिर भी वह कथंचित् पर्यायों से भिन्न कुछ भी चीज़ नहीं है और इन पर्यायों के दो भेद हैं एक व्यंजनपर्याय दूसरी अर्थपर्याय वा गोचर-वचन के विषयभूत स्थूल पर्याय को व्यंजनपर्याय कहते हैं, और वचन के अगोचर सूक्ष्म पर्यायों को अर्थपर्याय कहते हैं, यह दोनों ही पर्याय पर्यायत्व की अपेक्षा त्रिकालवर्ती अर्थात् अनादिनिधन है और द्रव्य इनके समूहरूप हैं क्योंकि सदा रहते हुए भी वह स्वभाव से उत्पादव्ययात्मक है।

फुटनोट:—प्रदेशत्व गुण की अवस्थाओं को भी व्यंजनपर्याय कहते हैं।"

(४) कौन सी अशुद्ध पर्याय में कैसा निमित्त होगा, वह निश्चित नहीं है, ऐसी झूठी कल्पना करने में आती है, **उसका फल यह होगा कि भगवान एक भी द्रव्य को परिपूर्णपने जानेंगे ही नहीं।**

(५) वे चार शुद्ध द्रव्यों को भी नहीं जानेंगे क्योंकि उनके हर समय की पर्याय में कौन से अशुद्ध जीव और अशुद्ध पुद्गल गमन करते हैं, गमन करते हुवे स्थिर रहते हैं, कौन सा द्रव्य अवगाहन पाता है और कौन सा द्रव्य परिणमन करता है, उन अशुद्ध पर्यायों का ज्ञान **भगवान को न होने से एक भी द्रव्य का पूर्ण ज्ञान नहीं होगा उसके गुण और उसकी अर्थ और व्यंजनपर्याय की बात तो एक ओर रखो।**

(६) सिद्ध भगवान भी नहीं जानेंगे क्योंकि उसके ज्ञान में किस वस्तु की कौन सी विकारी अशुद्ध अर्थपर्याय और अशुद्ध व्यंजनपर्याय है जो कि अनिश्चित होने की कल्पना करने में आती है।

इन सबका सार यह है कि अशुद्धपर्याय के लिये कौन सा निमित्त आवेगा, यह निश्चित नहीं है, ऐसी मान्यता कल्पित है और ऐसी मान्यतावालों को कभी सम्यक् श्रुतज्ञान प्रगट होगा ही नहीं।

(७) संक्षेप में ऐसा समझना कि छह द्रव्यों को केवलज्ञानी के ज्ञान में अनादि-निधन नहीं मानना और सादि-सांत मानना, वह तत्त्व से विरुद्ध हैं।

(८) अशुद्धपर्याय कब और किसप्रकार की होगी और विकारी पर्याय के लिये निमित्त कौनसा होगा, वह अनिश्चित है, ऐसी कल्पना वह केवलज्ञान के स्वरूप से, आगम से और ज्ञेय के स्वरूप से परिपूर्णतया विरुद्ध है। जिज्ञासुओं को ऐसा निश्चय करना कि—एक भी बात भूत-वर्तमान-भावी की स्थूल-सूक्ष्म की, निमित्त की सर्वज्ञ के ज्ञान के बाहर होना अशक्य है।

(९) 'व्यंजनपर्याय' का स्वरूप श्री नियमसार की गाथा १५ पृष्ठ ३८-३९ में दिया है। उसमें जीव के चारों प्रकार की संसारी गतियों की पर्यायों को 'व्यंजनपर्याय' कहिये, इसलिये अधिक समय तक रहनेवाली अशुद्ध पर्याय को व्यंजनपर्याय कहते हैं, उन सबको भगवान एक समय में जानते हैं, भगवान नहीं जाने तो उसका स्वरूप किसने जाना? आगम कहाँ से आया? भगवान के ज्ञान में न हो तो दिव्यध्वनि में उसका स्वरूप कभी नहीं आवेगा, दिव्यध्वनि में न आवे तो श्री गणधरदेव ने किसप्रकार जाना?

(१०) इस संबंध में श्री गोम्मटसार की गाथा ७२८ में कहा है कि:—

वीर मुहकमलणिग्गय सयल सुयग्गहणपयउणसमत्थं।
णमिऊणगोय ममहं, सिद्धं तालावमणुवोच्छं ॥७२८॥

वीर मुखकमल निर्गत सकल श्रुत ग्रहण प्रकटन समर्थम्।
नत्वा गौतममहं सिद्धांतालापमनुवक्ष्ये॥७२८॥

अर्थ—अंतिम तीर्थंकर श्री वर्द्धमानस्वामी के मुखकमल से निर्गत समस्त श्रुतसिद्धांत के ग्रहण करने और प्रगट करने में समर्थ श्री गौतमस्वामी को नमस्कार करके मैं उस सिद्धान्तालाप को कहूँगा।

(११) इससे सिद्ध हुआ कि सब शुद्ध-अशुद्ध पर्यायों को भगवान जानते हैं क्योंकि भगवान का ज्ञान सर्वभावगत है (देखिये, श्री गोम्मटसार जीवकांड गाथा ४६०)

३०१—**प्रश्न**(१०) केवलज्ञान में अनादि का द्रव्य सादिरूप नहीं भासते हैं, ऐसा कोई आगम वचन है ?

उत्तर—हाँ, ऐसा आगम वचन है, अनादि की वस्तु सादिरूप हो सकती नहीं है। देखिये श्री धवल पुस्तक ३ पृष्ठ ३० में लिखा है कि:—

'×××उसके अनादित्व का ज्ञान हो जाता है, इसलिए उसे 'सादित्व' की प्राप्ति हो जायेगी, सो बात भी नहीं है क्योंकि ऐसा मानने में विरोध आता है।'

३०२—**प्रश्न:**—(११) श्री प्रवचनसार की गाथा १५ में भगवान ज्ञेयभूत पदार्थों के 'पार' को प्राप्त होता है तथा उसकी टीका में ज्ञान ज्ञेयता को प्राप्त पदार्थों के 'अन्त' को प्राप्त कर लेता है, ऐसा कहा है तो द्रव्यों 'सान्त' हो गये, ऐसा मानना ठीक है ?

उत्तर:—(१) नहीं! भगवान के ज्ञान में सभी वस्तुओं का परिपूर्ण स्वरूप पहुँच गया है कोई भी वस्तु [उसकी कोई भी विकारी-अविकारी पर्याय, उसका कोई अंश (अविभाग परिच्छेद) और कोई निमित्त] ज्ञान के बाहर रहा नहीं है, ऐसा गाथा का अर्थ होता है—श्री प्रवचनसार गाथा ३२ में 'निरवशेषसर्व' ऐसा शब्द प्रयोग करके उस नियम को दृढ़ किया है।

(२) भगवान का ज्ञान सब ज्ञेयभूत पदार्थों के विषयों को जान लेता है। इसलिए जो पदार्थ अनंतरूप हो, वह कहीं सांतरूप हो जाते नहीं हैं।

(३) केवलज्ञान का अविभाग प्रतिच्छेदों का परिमाण उत्कृष्ट अनंतानंत है, उस ज्ञान में लोकालोक आकाश में एक नक्षत्र की भांति देखने में आता है और ऐसा ज्ञानरूप परमात्मा अनादिका है। (देखिये, श्री परमात्मप्रकाश, अध्याय १, मूल गाथा ३८, श्री पद्मनंदी आचार्य 'सिद्धस्तुति' का आठवाँ अधिकार, गाथा १, सदबौध-चंद्रिका तथा १० वाँ अधिकार गाथा ३३ 'अणुसमान')

(४) इसप्रकार केवलज्ञान परिपूर्णपने ज्ञेय पदार्थों को प्राप्त कर लेते हैं; केवलज्ञान का अपरिमित महात्म्य है, उसके पास जगत के समस्त पदार्थ अणुमात्र है, किंतु इससे वास्तव में कोई भी पदार्थ का माप कम होकर अणु जैसा छोटा हो जावे, ऐसा बनता नहीं है। इसप्रकार केवलज्ञान वस्तु का अंत-पार को प्राप्त हुआ, इसका अर्थ-'अनंतरूप वस्तु' गिनती के काल में अंतरूप हो गई—ऐसा नहीं बनता है, अंत का अर्थ इसी गाथा की टीका में श्री जयसेनाचार्य ने गाथा १५, पृष्ठ १९ में किया है:—'**स जगत्रयकालत्रयवर्ति समस्तवस्तुगतानंत धर्माणां युगपत्प्रकाशकं केवलज्ञानं प्राप्नोति**×××'

श्री अमृतचंद्राचार्य ने श्री प्रवचनसार गाथा १९८, पृष्ठ २४१ की टीका में 'ज्ञान परिपूर्ण होने से' ऐसा अर्थ किया है।

इसलिए आगम में 'पार' और 'अंत' शब्द आया हो, वहाँ उसका अर्थ, अविरुद्ध अर्थ-सम्यक्प्रकार से करना चाहिए। भगवान अकलंकदेव भी तत्त्वार्थ राजवार्तिक में ऐसे ही कहते हैं। देखिये पैरा नं० २७४ परिपूर्णरूप से...।

(५) श्री परमात्मप्रकाश की मूल गाथा ३८ में 'अनादि' शब्द आया है। इस पर से सिद्ध होता है कि **परमात्म अर्थात् सिद्धों तथा केवली भगवान प्रवाहरूप अनादि से है।**

(६) श्री पंचास्तिकाय गाथा १ की टीका के अनुसार तीर्थंकर भगवंतों (भगवानों) और सौ इन्द्रों प्रवाहरूप अनादि से चले आ रहे हैं। यह आगम सर्वज्ञ उपज्ञ होने से उसकी सत्यता को स्वीकार करके प्रथम कौन सा जीव सिद्ध हुआ, ऐसे अतात्विक तर्क को स्थान नहीं देना चाहिए।

३०३—**प्रश्न**—(१२) सर्वज्ञ के ज्ञान में सब पदार्थ अनादि-अनंत नहीं मानना और सादि-सांत है, ऐसा मानने में क्या दोष आता है ?

उत्तर:—सर्वज्ञ के ज्ञान में सब पदार्थ अनादि-अनंत नहीं मानना और सादि-सांत मानना, उसमें निम्न प्रकार के दोष आते हैं:—

(१) छह द्रव्यों का अनादि अनंतपना नहीं रहता है।

(२) किसी भी द्रव्य की पर्याय का अनादिरूप प्रवाहपना नहीं रहता है।

(३) छह द्रव्य स्वभाव-सिद्ध नहीं होने से जीव भी अनादि-अनंत नहीं है, ऐसा निश्चित होगा।

(४) जीव का परमपारिणामिकभाव अनादिकाल से है, ऐसा भी सिद्ध नहीं होता है।

(५) संसार अनादि से है, यह भी सिद्ध नहीं होता है।

(६) संसार का अनादिपना नहीं होने से आस्रव, बंध, पुण्य-पाप का अनादिपना प्रवाहरूप से नहीं रहता है।

(७) जीव की चार संसारी गति और सिद्धगति प्रवाहरूप से अनादि-अनंत रहती हैं, वह भी सिद्ध नहीं होती है।

(८) संवर-निर्जरा और मोक्ष का प्रवाहरूप से अनादि-अनंतपना सिद्ध नहीं होता है।

(९) तीर्थंकरों, केवली और सिद्ध भगवंतों का प्रवाहरूप से अनादि-अनंतपना रहता नहीं है।

(१०) जीव की पर्याय का अनादि से कर्म के साथ संबंध है, वह भी सिद्ध नहीं होता है।

(११) अभव्य जीव अनादि से अनंतकाल तक रहेगा, वह भी सिद्ध नहीं होता है।

(१२) जीव के पाँच भाव अनादि से अनंतकाल प्रवाहरूप से है, ऐसा सिद्ध नहीं होता है।

(१३) लोक का अनादि-निधनपना भी सिद्ध नहीं होता है।

(१४) मेरु आदि पर्यायों अनादि-अनंत रहनेवाली हैं, ऐसा आलापपद्धति आदि शास्त्रों में कहा है, वह भी सिद्ध नहीं होता है।

(१५) अकृत्रिम जिनमंदिर भी सिद्ध नहीं होते हैं।

(१६) व्यवहारराशि, अव्यवहारराशि, नित्य-निगोद, सिद्धराशि, सौ इन्द्रों, परमागम का अनादि-अनंतपना आदि सिद्ध नहीं होंगे।

(१७) केवलज्ञानादि नवक्षायिक लब्धि प्रगट हुई, वहाँ से अनंतकाल तक रहती हैं, वे सिद्ध नहीं होंगी।

(१८) उसका अनंतपना अनंतकाल तक नहीं रहेगा अर्थात् सर्वज्ञता का भी अंत आ जावेगा।

(१९) संक्षेप में—जैनतत्त्व, जैन पदार्थ, जैन ज्ञान, जैनधर्म, जैन देव-शास्त्र-गुरु, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त इत्यादि सब व्यवस्था कल्पित और असत्य ठहरेंगी, इसलिये धर्म जिज्ञासु सावधानी रखकर ज्ञान-ज्ञेय का जैसा स्वरूप है, वैसा मानना योग्य है।

३०४—**प्रश्न**—'कब कैसा निमित्त, किसको, कहाँ मिलेगा, उसकी कैसी प्रतिक्रिया होगी, यह बात अनिश्चित रहती है, अतः उन अनिश्चित निमित्तों के द्वारा होनेवाला परिणमन-पर्यायें भी अनियत वा अनिश्चित रहती हैं' यह कथन ज्ञानसमय-अर्थसमय और आगमसमय से विरुद्ध हैं,

ऐसा प्रथम सिद्ध किया किंतु वह कथन केवली भगवान की कोई दूसरी लब्धि से विरुद्ध है ?

उत्तर:—हाँ, धवला पुस्तक १४, पृष्ठ १७ में कथन निम्न प्रकार है:—

शंका—अरिहंतों के लाभान्तराय कर्म का क्षय हो गया है तो उनको सब पदार्थों की प्राप्ति क्यों नहीं होती ?

समाधान—सत्य है—उन्हें सब पदार्थों की प्राप्ति होती है, क्योंकि उन्होंने अशेष भुवन को अपने आधीन कर लिया है। देखिये एक ओर से ऐसा मानना कि सारा तीन भुवन भगवान के आधीन है और दूसरी ओर से कल्पित कथन मानना, कैसा परस्पर विरोध है ?

सर्वज्ञ भगवान के आधीन सारा भुवन है, इसलिये कब कैसा निमित्त किसको कहाँ मिलेगा और कैसी उसकी प्रतिक्रिया होगी, वह सब भगवान के आधीन है, ऐसा मानना चाहिये।

'यह बात अनिश्चित रहती है' ऐसा मानना तो लाभान्तरायकर्म का भगवान को अभाव नहीं हुआ है, ऐसी मान्यता पर रचित है—इसलिये यह तत्त्वव्यवस्था से विरुद्ध है।

३०५—**प्रश्न:**—'सर्वज्ञ व्यवहारनय से उन समस्त शुद्ध-अशुद्ध द्रव्यों की नियत तथा अनियत पर्यायों को जानता है' ऐसा कथन तो कल्पित है क्योंकि सब पर्याय अपने स्वकाल में होती हैं; इसलिये काल अपेक्षा कोई भी पर्याय अनियत हो सकती नहीं है—वह तो उपरोक्त ज्ञानसमय-अर्थसमय और आगमसमय से विरुद्ध सिद्ध किया है, किंतु उसे धवला-टीका के उपरोक्त आधार के साथ कुछ संबंध है ?

उत्तर:—हाँ, भगवान ने सारे भुवन को अपने आधीन कर लिया है, इसलिये कोई भी पर्याय काल अपेक्षा अनियत नहीं है; यदि अनियत रहती है; ऐसा माना जाय तो भगवान ने लाभान्तराय कर्म का नाश अपने शुक्लध्यान द्वारा नहीं किया है, ऐसा मानना होगा।

नियत-अनियत के अर्थ

'नियत' का एक अर्थ स्वाभाविक पर्याय होता है और अनियत का एक अर्थ वैभाविक पर्याय (अस्थिर-अशुद्ध पर्याय) होता है। वे भी भगवान के प्राप्त होने से भगवान के आधीन हैं, क्योंकि वे पर्यायें उत्पन्न होने के पहले तात्कालिकरूप से अपना स्वरूप भगवान को अर्पण करती हैं, इसलिये भगवान के उसका 'लाभ'-सर्वज्ञ हुआ, उस समय से हो गया है, ऐसा मानना चाहिये। जो ऐसा नहीं मानते, वे सर्वज्ञ को नहीं मानते हैं।

'व्यवहारनय से××जानता है' ऐसा कहकर भगवान वास्तव में जानते नहीं हैं अर्थात् वह

बात छद्मस्थ के और भगवान के ज्ञान में नहीं आती है, ऐसा जो कोई मानता है, वह 'व्यवहारनय' के स्वरूप से अज्ञात है। इस विषय में परमात्मप्रकाश अध्याय १ गाथा ५२ में कहा है कि ऐसा मानना महादूषण है, समयसार गाथा ३५६-३६५ में श्री जयसेनाचार्य कृत टीका में भी उसको महादूषण बताकर उस कथन को 'निश्चयनय' कैसे लागू पड़ता है, वह बतलाया है। जिज्ञासुओं को वहाँ से पढ़ लेना चाहिये।

३०६—**प्रश्नः**—'परंतु वह उनमें कुछ हस्तक्षेप नहीं करता (दखल नहीं देता) कि क्रमानुसार इस समय इस पदार्थ की यह पर्याय हो, अमुक पर्याय न हो' यह बात आगमानुकूल है ?

उत्तरः—नहीं, हस्तक्षेप करने का, दखल करने का और क्रमानुसार इस समय इस पदार्थ की वह पर्याय हो, अमुक पर्याय न हो, ऐसी बात इस विषय में लागू नहीं होती, कुछ भी संबंध नहीं रखती, उसका कारण निम्नप्रकार है—

(१) ज्ञान और ज्ञेय का अशक्य विवेचन है। इसलिये जैसा ज्ञेय भविष्य में परिणमेगा, ऐसा ही ज्ञान वर्तमान में होता है और जैसा ज्ञेय संबंधी ज्ञान वर्तमान में हुआ, ऐसा ही ज्ञेय भविष्य में नियमा अपने ज्ञेयस्वरूप के कारण परिणमित होगा ही-दूसरे प्रकार परिणमे, ऐसा बनता नहीं है।

(२) ज्ञान-ज्ञेय का परस्पर अविनाभाव संबंध होने से परस्पर निमित्त-नैमित्तिक संबंध है, इसलिये ज्ञान एक प्रकार का और ज्ञेय का स्वरूप दूसरे प्रकार का, ऐसा बनता ही नहीं।

(३) भगवान के लाभान्तराय कर्म का अभाव है, इसलिये सारा भुवन भगवान के आधीन है, उससे ऐसा नियम हुआ कि भगवान को-सब द्रव्य, सब गुण, सब पर्यायें, अशुद्धपर्यायें और शुद्धपर्यायें सब अपना-अपना स्वरूप-अर्पण करती हैं। यदि इसप्रकार की अर्पणता न हो अर्थात् अर्पणता के विरुद्ध प्रवर्तते तो वे सब ज्ञेय भगवान के प्रति विद्रोही हुये, चक्रवर्ती के सामने तो कोई विद्रोही हो—उसके आधीन होने का कोई इंकार करे भी, किंतु सर्वज्ञ भगवान तो धर्म चक्रवर्ती होने से सब पदार्थ प्रतिनिश्चितरूप से उसके आधीन ही हर समय रहते हैं।

(४) जगत में एक समय भी सर्वज्ञ न हो, ऐसा बनता नहीं है। इसप्रकार जो तत्त्व व्यवस्था को नहीं मानते हैं, वे भगवान को नवकेवललब्धि का स्वामी नहीं मानते हैं।

३०७—**प्रश्न**—'अतएव सर्वज्ञ के ज्ञान अनुसार भी पदार्थों की नियत-अनियत पर्यायें नियत-अनियत ही जानी जाती हैं' ऐसा कथन सत्य है ?

उत्तरः—असत्य है, क्योंकि वे ज्ञानसमय-अर्थसमय और आगमसमय से विरुद्ध हैं, जो

ऊपर बतलाया है। पदार्थों की अनादि से अनंतकाल में से एक समय भी पर्याय (-उत्पादव्ययरूप पर्याय) अकाल में होती ही नहीं है। ऊपर के प्रश्न के उत्तर में जो चार कारण बताये हैं, वे यहाँ भी लागू पड़ते हैं, इसलिये विशेष लिखा नहीं है। अत: हरेक पर्याय अपने नियत स्वकाल में ही होती है।

३०८—**प्रश्न:**—'जैसे यथासमय नियतकाल मृत्यु को वह कालमृत्यु जानता है और आयु शेष रहते हुए भी किसी नैमित्तिक दुर्घटनावश असमय में होनेवाली अकालमृत्यु को अकालमृत्यु के रूप में जाना कहता है' यह कथन आगमानुसार है।

उत्तर:—आगम से विरुद्ध है, प्रथम तो यहाँ 'अकाल' का अर्थ क्या है—वह स्पष्ट होना चाहिये कि विपरीत अर्थ न हो जाये। श्री नियमसार गाथा १५४ टीका में वर्तमान पंचमकाल को 'दग्धकालरूप अकाल' विशेष दिया है, क्या 'काल' दग्ध होता है? जलता है? कालद्रव्य तो अमूर्त ही है, दग्ध हो सकता नहीं। उसे 'अकाल' कहने से क्या यह पंचमकाल असमय में आया है? नहीं... वह अपने नियतक्रम में ही आया है। वर्तमान में जीव विशेष कलुषित परिणामवाले इस क्षेत्र में जन्मते हैं और आचरण भी ऐसा करते हैं, ऐसा ज्ञान कराने के लिये इस काल को 'दग्ध कालरूप अकाल' कहने में आया है।

वेदनीयादि चार कर्मों को 'अघाति' कहने में आया है; इसलिये क्या वे अव्याबाध आदि चार गुणों की पर्यायों के घात में निमित्त नहीं हैं? हैं, किंतु ज्ञानावरणादि कर्मों से उसका स्वरूप अन्य प्रकार का है, ऐसा बताने के लिये वे 'अघाति' कहलाते हैं। जगत में दो प्रकार का आयुकर्म है, इसलिये दो प्रकार का मरण होता है (१) निरुपक्रम आयु है, उसके धारक जीव के मरण को 'मृत्यु' ऐसा नाम दिया और सोपक्रमआयु के धारक जीव के मरण को 'अकालमृत्यु' कहने में आता है—अत: वे अक्रम (आगे-पीछे) हो गया, ऐसी कल्पना करना उचित नहीं है, व तत्त्व व्यवस्था से विरुद्ध ही है। कोई भी घटना को दुर्घटना कहना, वह व्यवहार कथन है। तत्त्वत: कोई भी घटना हो, वह अपने द्रव्य की पर्याय है, दुर्घटना है ही नहीं। वह दुर्घटना है, ऐसा व्यवहारकथन रागी जीवों के ऐसा बनाने के प्रति अरुचि है ऐसा ज्ञान कराता है किंतु उन घटनाओं को तत्त्वदृष्टि से देखा जाये तो दुर्घटना है ही नहीं। उस घटना से मृत्यु हो गयी, यह बात भी तत्त्वदृष्टि से सत्य नहीं; तत्त्वदृष्टि से ऐसा नियम है कि सोपक्रम आयुवालों के नियमा उदीरणा मरण होता है। उदय मरण कभी नहीं होता, किंतु उदीरणा मरण भी सदा अपने स्वकाल में ही होते हैं। वासुदेव श्री कृष्ण का मरण सोपक्रमायु का दृष्टांत है। उनके मरण को 'अकाल मृत्यु' कहा है। भगवान श्री नेमिनाथ ने

वह मरण किस समय, कहाँ, किसप्रकार होगा, वह कहा था और वह मरण ऐसा ही हुआ – अपने नियत समय में ही हुआ। अत: उसको असमय में मानना तत्त्व से विरुद्ध है। घटना न आती तो वह नहीं मरते, ऐसी दलील काल्पनिक है क्योंकि वह घटना बनी है, वह सत्य है, जो बनाव बन गया, वह असत्य किसप्रकार हो सकता है ? घटना से मरण हुआ, वह तो मात्र निमित्तपने का सूचन है। एक द्रव्य की पर्याय को दूसरा द्रव्य उत्पन्न कर दे, ऐसी मान्यता जैन सिद्धांत में मान्य नहीं है।

'अकाल' मृत्यु में अकाल का अर्थ क्या है। वह प्रथम प्रश्न के उत्तर में आ गया है।

अनादि अनंत-सादि सांत-संख्या-श्रुतज्ञान-केवलज्ञान

अनादि अनंत और सादि सांत

३०९—इस विषय में स्वामी समंतभद्राचार्य द्वारा 'स्वयंभूस्तोत्र' में भगवान सुमतिनाथ की स्तुति करने में आई है, वह बहुत ही स्पष्ट और गम्भीर होने से यहाँ उस तरफ लक्ष्य खींचने में आता है।

३१०—श्लोक नं० २१ में भगवान स्तुति करने योग्य इसलिये कहने में आये हैं कि **जीवादि तत्त्वों का स्वरूप 'सुदंर दृढ़ युक्तियों से' सिद्ध किया है** और इसीप्रकार मानने से **सर्वप्रकार की क्रिया तथा कर्ता आदि सर्वकारकों के स्वरूप की सिद्धि होती है। अन्यमत मानने से सिद्धि हो भी नहीं सकती, ऐसा कहा है।**

३११—श्लोक २३ में वस्तु अर्थात् छह द्रव्य अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से स्वचतुष्टय की अपेक्षा सत् और परचतुष्टय की अपेक्षा असत् है – ऐसा आपने सिद्ध किया है। वस्तु में अपना वस्तुपना तो है किंतु अन्य वस्तुपना नहीं है, ऐसा कहा है।

३१२—श्लोक २४ में वे सब द्रव्य नित्य-अनित्य इसप्रकार अनादि से अनंत काल तक रहनेवाले हैं ऐसा बताकर, फिर ऐसा **मानने से ही क्रिया कारक बन सकता है, ऐसा बताया है। कोई भी द्रव्य को सादि-सांत मानने से उसमें क्रिया और कारक कुछ भी नहीं हो सकेगा, ऐसा भगवान के केवलज्ञान में प्रत्यक्ष देखने में आया है, ऐसा बताया है।**

३१३—श्री पंचास्तिकाय की गाथा १५ में भी इसीप्रकार कहा है कि सत् का नाश नहीं है, असत् का उत्पाद नहीं है, सत् द्रव्यों-गुणों और पर्यायों में ही उत्पाद-व्यय करते हैं, सबको अनादि-अनंत गुण-पर्याय उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्त सत् मानने से ही क्रिया और कारक बन सकते हैं, ऐसा श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव भी कहते हैं।

३१४—श्री पद्मनंदि-पंचविंशति में १६ वाँ अधिकार 'स्वयंभूस्तोत्र' का है, उसके पाँचवें

श्लोक में श्री सुमतिनाथ भगवान की स्तुति करने में आई है, उसमें कहा है कि हे सुमति जिनेन्द्र! क्योंकि आपने नय एवं प्रमाण आदि विधि से संगत तत्व (वस्तुस्वरूप) को अतिशय निर्दोष रीति से प्रकाशित किया था, अतएव आपका 'सुमति' यह नाम सार्थक है, हे जिन! आपको नमस्कार हो।

३१५—इसलिये केवलज्ञान में भगवान द्रव्यों को सदाकाल अनादि-अनंत देखते हैं और ऐसा मानने से ही भगवान सुमतिनाथ का स्तोत्र २१, २३ और २४ में कहे अनुसार सर्वप्रकार की क्रिया और कारक तत्त्वों की सिद्धि हो सकती है।

३१६—'आदि-अंत' मानने से क्षणिक एकांत अथवा ईश्वरवाद का प्रवेश होता है जो कि 'सुंदर दृढ़ युक्ति से' विरुद्ध है और उसमें किसी भी प्रकार की क्रिया कारक बन सकती ही नहीं।

३१७—श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा, गाथा २२६ से २३१ तक में भी ऐसा ही वस्तु का स्वरूप कहा है, यदि ऐसा न मानने में आवे तो कुछ भी क्रिया कारक बन सकता ही नहीं।

३१८—याद रखिये कि स्वामी समंतभद्र ही अन्य वादियों को निरस्त करनेवाले महापराक्रमी आचार्य थे। उन्होंने स्पष्टरूप से क्रिया और कारक, किसप्रकार का वस्तुस्वरूप मानने से हो सकता है। उसप्रकार युक्ति बतलाकर द्रव्य का स्वरूप जैसा श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने ज्ञेय अधिकार गाथा ९५ से ९८ तक में तथा श्री पंचास्तिकाय गाथा १५ में कहा है, ऐसा ही युक्ति द्वारा श्री समंतभद्र आचार्य ने कहा है और श्री समयसार के स्याद्वाद अधिकार में भी श्री अमृतचंद्राचार्य ने भी पूर्व आचार्यों का अनुकरण करके उसीप्रकार स्वरूप बताया है, देखिये कलश नं २५२ से २६१ तक।

संख्या [गणना]

३१९—संख्या दो प्रकार की होती है। (१) मर्यादित (२) अमर्यादित। मर्यादित संख्या को तो सामान्य जन भी स्वीकार करते हैं, अमर्यादित संख्या सर्वज्ञ भगवान और उसके अनुसार श्रुतकेवली तथा आचार्यादि बताते हैं।

३२०—श्री पंचास्तिकाय की गाथा १ में जिन भगवान को नमस्कार करने में आया है। उसमें उस नमस्कार के कारण में जिनेन्द्र भगवान को 'अंत अतीत गुण' होते हैं, ऐसा बताया है, 'अंत अतीत' कहो कि अनंत कहो, दोनों एक ही बात है, उसकी टीका में कहा है कि:—

''अनंत-क्षेत्र से अंतरहित और काल से अंतरहित—परम चैतन्यशक्ति के विलास स्वरूप गुण जिनके वर्तते हैं।' ऐसा कहकर (जिनको) परम अद्भुत ज्ञानातिशय प्रगट होने के कारण ज्ञानातिशय को प्राप्त योगीन्द्रों से भी बंद्य हैं, ऐसा कहा है।''

३२१—इससे सिद्ध होता है कि संख्या की अपेक्षा, काल की अपेक्षा, अंत रहित अनंत होते हैं, क्षेत्र और काल का अनंतपना बताने से द्रव्य का और भाव का भी गर्भितपना आ गया है। इसलिये संख्या (गणना) अमर्यादित अनंत भगवान के ज्ञान में होती है, ऐसा मानना न्याय युक्त है। (देखिये, श्री धवल पुस्तक ३, पृष्ठ ११ उसमें पहिला समाधान नं०१ समाधान नं०२ और समाधान नं० ३)

गणना की अपेक्षा 'अनंत' संबंध में देखिये श्री धवल पुस्तक ३, पृष्ठ १८ से २६ तक 'काल' अपेक्षा पृष्ठ २७ से ३२ तक, क्षेत्र संबंधी अनंतानंत हो सकते हैं, उसका यहाँ प्रयोजन नहीं। समस्त जीवराशि के संबंध में देखिये वही पुस्तक पृष्ठ २४ का अंतिम समाधान पृष्ठ २५ और ३१, ३५८, ३५९।

श्रुतज्ञान (केवलज्ञान अनुसार)

३२२—केवलज्ञान का परम अद्‌भुत ज्ञान-अतिशय है, ऐसा ऊपर कहने में आया है। ऐसा परम अद्‌भुतज्ञान अतिशय प्रगट हुआ, उसमें आगामी काल की कोई विकारी पर्याय को किसप्रकार का निमित्त मिलेगा और किसप्रकार की प्रतिक्रिया होगी, वह अनिश्चित है, ऐसी झूठी कल्पना करना वह ज्ञान-अतिशय का परम अद्‌भुतपने का अस्वीकार करना है। श्री गोम्मटसार गाथा ४६० और श्री परमात्मप्रकाश गाथा ५ की टीका तथा 'स्वयंभूस्तोत्र' के श्लोक ११४ में बताया है कि सूक्ष्म पदार्थ कि स्थूल पदार्थ, वे सब भगवान के ज्ञान में बराबर आते हैं और उनका निमित्त भी आता है, ऐसा श्री परमात्मप्रकाश में कहा है और 'स्वयंभूस्तोत्र' श्लोक ११४ में चर-अचर पदार्थ कहा है, 'चर' शब्द में गमन करनेवाले सब संसारी जीवों तथा परमाणु तथा पुद्‌गलिक स्कंधों जो कि विभाव पर्याय है, वह भी सब ज्ञात होता है।

३२३—श्री नियमसार में भी असहाय की व्याख्या करने में आई है, उससे भी यह बात सिद्ध है। श्री परमात्मप्रकाश की गाथा ५ की टीका में बाह्य निमित्त उत्पन्न होनेवाले सब स्थूल और सूक्ष्म पदार्थ केवलज्ञान का तात्कालिक रूप से विषय है, ऐसा कहा है और उसीप्रकार श्री पंचास्तिकाय की गाथा १ की टीका में परम अद्‌भुत अतिशय ज्ञान का प्रगटपना कहकर स्पष्ट बताया है, उस गाथा की टीका में श्री जयसेनाचार्य कहते हैं कि अनंत द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव को जाननेवाला अनंत केवलज्ञान गुण जिन भगवंतों को वर्तता है। काल का अर्थ पर्याय भी होता है, उसमें विकारी और अविकारी दोनों पर्यायों का समावेश हो जाता है, भाव में भी उसका समावेश हो जाता है क्योंकि विकारी पर्याय पर्यायपने को या भावपने को उलंघन नहीं करती। इसकारण से श्री

गोम्मटसार की गाथा में केवलज्ञान सर्व भावगत है, ऐसा स्पष्ट कहा है।

३२४—श्रुतज्ञान उसके अनुसार ही होता है, उसका और केवलज्ञान का विषय समान है, ऐसा भगवान पद्मनंदी ने श्रुतदेवता स्तुति अधिकार नं० १५ और श्लोक नं० २३ में कहा है, वह निम्नप्रकार है:—

''हे वचनों की अधीश्वरी! जो तेरे दोनों चरणोंरूप कमलों की भक्ति से परिपूर्ण है, उसके पूर्णश्रुतज्ञानरूप वह तीसरा नेत्र प्रगट होता है जो कि मानों केवलज्ञान के साथ स्पर्धा को ही प्राप्त हो करके उसके विषयभूत समस्त विश्व को देखता है। विशेषार्थ:—अभिप्राय यह है कि जिनवाणी की आराधना से द्वादशांगरूप पूर्ण श्रुत का ज्ञान प्राप्त होता है, जो विषय की अपेक्षा केवलज्ञान के ही समान है, विशेषता दोनों में केवल यही है कि जहाँ श्रुतज्ञान उन सब पदार्थों को परोक्ष (अविशद) स्वरूप से जानता है, वहाँ केवलज्ञान उन्हें प्रत्यक्ष (विशद) स्वरूप से जानता है, इसी बात को लक्ष्य में रखकर यहाँ यह कहा गया है कि वह श्रुतज्ञानरूप तीसरा नेत्र मानों केवलज्ञान के साथ स्पर्धा ही करता है।''

३२५—इसप्रकार इस प्रश्न का विवेचन पूर्ण होता है। कुछ विशेष विवेचन आगामी प्रश्नों में आवेगा। इस विषय को पूर्ण करने के पहिले जिज्ञासुओं का लक्ष्य श्री समयसार की गाथा ३८ पर ले जाने में आता है। वह गाथा निम्नप्रकार है:—

अहमेकः खलु शुद्धो दर्शनज्ञानमयः सदाऽरूपी।
नाप्यस्ति मम किंचिदप्यन्यत्परमाणुमात्रमपि॥३८॥

इस गाथा में काल अपेक्षा 'सदा' जीवद्रव्य को बताया है तथा अस्ति-नास्ति से अनेकांत स्वरूप भी बताया है।

३२६—श्री प्रवचनसार का कलश नं० २०, पृष्ठ ३३६ हिन्दी में कहते हैं कि—

वल्गत्वद्य विशुद्ध बोध कलया स्याद्वाद विद्या बलात्।
लब्ध्वैकं सकलात्मशाश्वतमिदं स्वं तत्त्वमव्याकुलः॥२०॥

अर्थः—स्याद्वाद् विद्या के बल से विशुद्ध ज्ञान की कला द्वारा इस एक समस्त शाश्वत स्वतत्व को प्राप्त करके आज (लोगों) अव्याकुलरूप से नाचो (परमानंद परिणामरूप परिणत होओ।)

(क्रमशः)

वस्तु स्वरूप

प्रश्न—एक द्रव्य दूसरे द्रव्य की क्रिया-कार्य को उत्पन्न न कर सके, न बदला सके, पर का कुछ भी न कर सके, यह नियम उपादान कर्ता के अर्थ में यथार्थ है किंतु निमित्तरूप से कर्ता हो सकता है या नहीं ?

उत्तर—नहीं, देखो समयसार गाथा ३२१-२३ 'जिसप्रकार लौकिक जनों के मत में (मान्यता-अभिप्राय में) देव, नारक, पशु, मनुष्य प्राणियों को विष्णु करता है और यदि श्रमणों (मुनियों) के मंतव्य में भी छह काय के जीवों को आत्मा करता हो तो लोक और श्रमणों का एक सिद्धांत होता है, कुछ भी अंतर दिखता नहीं; (कारण कि) लोक के मत में विष्णु करता है और श्रमणों (जैन मत के श्रमणों) के मत में भी आत्मा करता है (इसलिये कर्तापने की मान्यता में दोनों समान हुये) इसप्रकार कर्ता माननेवालों को मोक्ष होता नहीं।

निमित्ताधीन दृष्टिवाले पराधीनता और पर के कार्य में निमित्त को वास्तव में कर्ता मानते हैं, उस मत का उपरोक्त गाथा-टीका में निराकरण किया है तथा स्व० पंडित श्री गोपालदासजी बरैयाजी कृत जैन सिद्धांत दर्पण में ईश्वर कर्तृत्व मीमांसा में ईश्वर कर्तावादी ईश्वर को निमित्तकर्ता मानते हैं, उसका तो उन्होंने अष्टसहस्री टीका के आधार से न्याय द्वारा खंडन किया है किंतु आज तो जैन नाम के धारक व्यवहारनय का विपरीत अर्थ करके निमित्त को वास्तव में कर्ता मानते हैं, उसको शास्त्र में मिथ्यादृष्टि क्हा है। संयोग में एकता बुद्धिवाले मानते ही हैं कि हम हैं तो भाषा होती है, मैं शरीर का कार्य-पर का कार्य कर सकता हूँ, पर का रक्षण-जीवन मरणादि मैं कर सकता हूँ, मैं दूसरों की व्यवस्था कर सकता हूँ तथा जड़कर्मों के कारण जीव को राग-द्वेष अज्ञान, सुख-दु:खादि होते हैं। जैसा कर्मोदय का विपाक हो, वैसा ही डिग्री टू डिग्री रागादि जीव को करना ही पड़े, ऐसा निमित्त कर्तावादी मानते हैं, वह सभी ईश्वर कर्तावादी के समान मिथ्यादृष्टि ही हैं।

समयसार कलश नं० २०० में कहा है कि 'आत्मद्रव्य का और परद्रव्य का कुछ भी संबंध नहीं है। इसप्रकार कर्ता-कर्मपने के संबंध का अभाव होने से आत्मा के निमित्त से-व्यवहार से भी परद्रव्य का कर्तृत्व कहाँ से हो ?'

व्यवहारनय अन्य के भाव को अन्य का कहता है और वह वीतरागता के लिये आश्रय करनेयोग्य नहीं है, इसलिये अभूतार्थ है।

प्रश्न—क्या व्यवहारनय सर्वथा अभूतार्थ है ?

उत्तर—नहीं; व्यवहारनय और उसका विषय व्यवहार से भूतार्थ है किंतु मोक्षमार्ग के लिये आश्रय करनेयोग्य जरा भी नहीं है, इसलिये तो सर्वथा अभूतार्थ है।

प्रश्न—क्या व्यवहारनय आश्रय करनेयोग्य नहीं है ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि वह पराश्रितभाव होने से बंध का ही कारण है। भूमिकानुसार वह आते हैं किंतु व्यवहार को निश्चयनय के समान सत्यार्थ माना जाये, समकक्ष माना जाये, आदरणीय (-उपादेय) माना जाये तो ऐसी मान्यतावाला मिथ्यादृष्टि ही रहता है। अतः निमित्त-शुभराग धर्म के लिये-वीतरागता के लिये जरा भी आश्रय करनेयोग्य नहीं है।

सोनगढ़ समाचार

परमोपकारी पूज्य स्वामीजी सुखशांति में विराजमान हैं। प्रवचन में सबेरे प्रवचनसार गाथा १२६ तथा दोपहर में निर्जरा अधिकार चालू है। कुछ दिन सबेरे पंचास्तिकायजी शास्त्र चलेगा, सबेरे जो प्रवचन होते हैं, उनकी टेपरीलें भरी जाती है।

तारीख १६-११-६३ भगवान महावीर निर्वाण कल्याणक मनाया गया था। अष्टाह्निका पर्व हर वर्षानुसार परम उत्साहसहित मण्डल विधानपूर्वक मनाया गया था। इसीप्रकार राजकोट, जामनगर, बम्बई आदि मुमुक्षु मंडलों से भी समाचार आये हैं।

दक्षिण तीर्थयात्रा के लिये पूज्य स्वामीजी का मंगल प्रस्थान तारीख ५ जरवरी सन् १९६४ को होगा। यात्रा संघ का प्रवेश पत्र भेजने की अंतिम तिथि तारीख ३०-११-६३ तक थी, वह बढ़ाकर तारीख १५-१२-६३ तक कर दी है। कुंद्रादि तारीख १७-१-६४ मूल बिद्री तारीख १८-१९। श्रवणबेलगोला-बाहुबली तारीख २१-२२, वंदेवास-पोन्नूर तारीख २६-२७ के दिन यात्रा होगी।

बाद स्वामीजी सौराष्ट्र में-राजकोट तारीख १३-२-६४ को पधारेंगे। वहाँ फाल्गुन सुदी ३ को श्री समवसरणजी, जिनमंदिर तथा श्री मानस्तंभ की शिलान्यास विधि पूज्य स्वामीजी के तत्त्वावधान में होगी। राजकोट में करीब २५-२-६४ तक ठहरेंगे। बाद रखियाल (अहमदाबाद) जहाँ नूतन जिन मंदिरजी में वेदी प्रतिष्ठा का बड़ा भारी महोत्सव होनेवाला है, वहाँ पूज्य स्वामीजी पधारेंगे तारीख १-३-६४ वेदी प्रतिष्ठा का दिन है। वहाँ स्वामीजी तारीख २६-२-६४ से १-३-६४ तक विराजेंगे।

अशोकनगर—

दिगम्ब जैन मुमुक्षु मंडल द्वारा आमंत्रण आने से ब्रह्मचारी हेमराजजी जैन वहाँ जैन शिक्षण कक्षा चलाने के लिये पधारे थे, वहाँ प्रवचन में तथा कक्षा में ५०० करीब संख्या में धर्म जिज्ञासुओं ने १६ दिन तक बड़ी रुचि सहित लाभ लिया।

पावागढ़—

श्री बाबूभाई (फतेपुर-गुजरात) पधारे थे, वहाँ अष्टाह्निका पर्व में पूजा भक्ति, प्रवचन-शास्त्र स्वाध्याय, तत्त्वचर्चा, जिनेन्द्र रथयात्रा आदि कार्यक्रम थे। धर्म जिज्ञासुओं ने बड़ी संख्या में एकत्र होकर लाभ लिया।

वचनामृत

'धर्म' वह वस्तु बहुत गुप्त रही है। वह बाह्य संशोधन से मिलनेवाली नहीं है, अपूर्व अंतर संशोधन से वह प्राप्त होती है। जो अंतर संशोधन किसी महाभाग्य, सद्गुरु अनुग्रह से प्राप्त कर सकते हैं।

एक भव का अल्प सुख के लिये अनंतभव का अनंत दुःख नहीं बढ़ाने का प्रयत्न सत्पुरुष करते हैं।

जगत को भला दिखाने के लिये अनंत बार प्रयत्न किये, इससे भला हुआ नहीं। कारण कि परिभ्रमण और उसके हेतुरूप दोष अब भी प्रत्यक्ष रहे हैं (-कर रहे हैं) अतः इस एक भव आदि आत्मा का भला हो इसप्रकार व्यतीत किया जाये तो अनंत भव का निस्तार हो जायेगा; ऐसा मैं लघुत्वभाव से समझा हूँ।

—श्री राजचन्द्रजी

नया प्रकाशन

मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्रजी)

(तीसरी आवृत्ति)

छपकर तैयार हो गया है। तत्त्वज्ञान के जिज्ञासुओं द्वारा उसकी बहुत समय से जोरों से माँग है, जिसमें सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वार्थों का और सम्यग्दर्शन आदि का निरूपण सुगम और स्पष्ट शैली से किया गया है, सम्यक् अनेकांतपूर्वक नयार्थ भी दिये हैं, और जिज्ञासुओं के समझने के लिये विस्तृत प्रश्नोत्तर भी नय प्रमाण द्वारा-सुसंगत शास्त्राधार सहित दिये गये हैं, अच्छी तरह संशोधित और कुछ प्रकरण में प्रयोजनभूत विवेचन बढ़ाया भी है, शास्त्र महत्वपूर्ण होने से तत्त्व प्रेमियों को यह ग्रंथ अवश्य पढ़ने योग्य है, पत्र संख्या ९०० करीब, मूल्य लागत मात्र ५), पोस्टेज आदि अलग।

लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका

(चतुर्थ आवृत्ति)

१८०००, बुक छप चुकी हैं, बिक चुकी हैं, समाज में धर्म जिज्ञासा का यह नाप है। शास्त्राधार सहित संक्षेप में खास प्रयोजनभूत तत्त्वज्ञान की जानकारी के लिये यह उत्तम मार्गदर्शक प्रवेशिका है। जैन जैनेतर सभी जिज्ञासुओं में नि:संकोच बांटने योग्य है। इंगलिश भाषा में भी अनुवाद कराने योग्य है। जिसमें अत्यंत स्पष्ट सुगम शैली से मूलभूत अति आवश्यकीय बातों का ज्ञान कराया गया है। बढ़िया कागज, छपाई, सुंदर आकार, पृष्ठ संख्या १०५, मूल्य सिर्फ २५ नये पैसे, पोस्टेजादि अलग।

पता—**श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट**
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

समयसार शास्त्र	५-०	जैन बाल पोथी	०-२५
प्रवचनसार	प्रेस में	छहढाला बड़ा टाईप (मूल)	०-१५
नियमसार	५-५०	छहढाला (नई सुबोध टी.ब.)	०-८७
पंचास्तिकाय	४-५०	ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	२-५०
मोक्षशास्त्र बड़ी टीका (तीसरी आवृत्ति)	५-०	सम्यग्दर्शन (तीसरी आवृत्ति)	१-८५
स्वयंभू स्तोत्र	०-६०	जैन तीर्थयात्रा पाठ संग्रह	१-४५
मुक्ति का मार्ग	०-६०	अपूर्व अवसर प्रवचन और	
समयसार प्रवचन भाग १	४-७५	श्री कुंदकुंदाचार्य द्वादशानुप्रेक्षा	०-८५
समयसार प्रवचन भाग २	४-७५	भेदविज्ञानसार	२-०
समयसार प्रवचन भाग ३	४-२५	अध्यात्मपाठसंग्रह पक्की जिल्द	५-०
समयसार प्रवचन भाग ४	४-०	'' '' कच्ची जिल्द	२-२५
[कर्ताकर्म अधिकार, पृष्ठ ५६३]		भक्ति पाठ संग्रह	१-०
मोक्षमार्ग-प्रकाशक की किरणें प्र०	१-०	वैराग्य पाठ संग्रह	१-०
'' ''द्वितीय भाग	२-०	निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	०-१५
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र०	०-६०	स्तोत्रत्रयी	०-५०
द्वितीय भाग	०-६०	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-२५
तृतीय भाग	०-६०	'आत्मधर्म मासिक' वार्षिक चंदा	३-०
श्री अनुभवप्रकाश	०-३५	'' फाईलें सजिल्द	३-७५
श्री पंचमेरु आदि पूजा संग्रह	१-०	शासन प्रभाव तथा स्वामीजी की जीवनी	०-१२
दसलक्षण धर्मव्रत उद्यापन		जैनतत्त्व मीमांसा	१-०
बृ० पूजा भाषा	०-७५		

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।